* ओ३म् * 12300

पुराणालोचन-ग्रन्थमाला

RAJASTHAN BOOK DEPOT
CHAWRI BAZAR. DELHI.

सम्पादक—

स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी महाराज

विद्या प्रकाश विद्युत् प्रेस लाहौर में प्रिण्टर
पं० महावीर प्रसाद के प्रबन्ध से छपी।

ओ३म्

वेदोपदेश

विधर्म्मी प्रायः हमारे सिद्धान्तों को लेकर पूछते हैं, इस का वेद से प्रमाण दो । और बहुत बार आर्य्यों को निरुत्तर होना पड़ता है। इस कठिनता को दूर करने के लिए वे० शा० श्रीमान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी ने 'वेदोपदेश' नाम से एक ग्रन्थ लिखा है। उस के प्रथम भाग का नाम है 'वैदिक धर्म'। उस में प्रायः सम्पूर्ण वैदिक सिद्धान्तों के प्रतिपादक मन्त्र अर्थ सहित दे दिए हैं। अर्थ बहुत स्पष्ट और सरल भाषा में किया गया है। उपदेशक तथा सर्वसाधारण वैदिक धार्म्मियों के काम की पुस्तक है। मूल्य.

इस का दूसरा भाग 'वैदिक देशभक्ति' भी शीघ्र प्रकाशित होगा।

ओ३म्

पुराणालोचन ग्रन्थमाला, पंचम पुष्प

कूर्म्म पुराण की आलोचना

लेखक—

डिंगा निवासी

पण्डित भक्तराम जी, आर्य्योपदेशक,
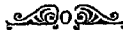
संपादक—

वे.श. श्रीमान् स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी महाराज,
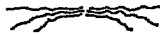
प्रकाशक—

संतराम ब्रादर म० राजपाल,

आर्य्य पुस्तक भंडार, लोहारी दरवाजा लाहौर।

दयानन्दाब्द १०५, मघर १९८६ वि०

पहली वार]

[मूल्य ।।=)

प्रकाशकः—

संतराम ब्रादर म० राजपाल,
आर्य्य पुस्तक भंडार,
लाहौर ।

वैदिक धर्म्म संबन्धी सब प्रकार के ग्रन्थ मिलने का पताः—

संतराम ब्रादर म० राजपाल,
आर्य्य पुस्तक भंडार, लोहारी दरवाजा लाहौर ।

मुद्रकः—
पं० महावीर प्रसाद
विद्याप्रकाश विद्युत् प्रैस.
चंगड़ मुहल्ला, अनारकली लाहौर ।

विषय सूची

ओ३म्

पुराणालोचना ग्रन्थ माला

'पुराणों में क्या क्या विषय हैं' यह साधारण लोगों को तो क्या, बड़े २ पण्डितों को भी मालूम नहीं। पुराण चूंकि आकार में बहुत बड़े हैं। इस वास्ते सारे पुराण तो क्या कोई एक पुराण भी पढ़ना मुश्किल हो जाता है। इस कठिनता को दूर करने, तथा सर्व साधारण को पुराणों के विषयों का ज्ञान कराने के लिए 'पुराणालोचन ग्रन्थमाला' जारी की गई है। अब तक इसमें भविष्य, शिव, गरुड़, बाराह तथा कूर्म्म पुराण की आलोचनाएं छप चुकी हैं। ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, देवीभागवत, ब्रह्मवैवर्त्त आदि की आलोचनाएं शीघ्र छपने वाली हैं। शीघ्र ही ग्राहकों में नाम लिखाइए—
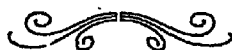
ओ३म्

भूमिका

परिचय

पुराण पौराणिक आर्य्योंके परम मान्य ग्रन्थ हैं,इनको कभी वे वेदसे भी श्रेष्ठ कहने लग जाते हैं। किंतु पौराणिकों में कितने हैं,जिन्होंने पुराण पढ़ना तो दूर रहा, पुराणके दर्शन भी किए हों। दर्शन की क्या कहें, पुराणों के नाम भी जानने वाले विरले हैं। यह जन साधारण की अवस्था नहीं, अपितु बड़े बड़े. सनातनधर्मधुरीण पण्डितप्रवीणों की भी यही दशा है। हमारा विश्वास, है कि जो सज्जन पुराणों को समझकर पढ़ने का कष्ट स्वीकार करेगा, उसकी पुराणों पर श्रद्धा रह ही नहीं सकती। परिशिष्ट में हमने यहबात म. म. प. गिरिधर शर्म्मा जी चतुर्वेदी के वचनों से सिद्ध कर दी है।

प्रस्तुत 'कूर्म्मपुराण की आलोचना' जिस पुस्तक के आधार से रची गई है। वह बम्बईके 'वेंकटेश्वर प्रेस' की छपी है। उसके कुल १६५ पत्रे हैं। उसके अन्त में

'इदं कूर्म्मपुराणं मुम्बय्यां खेमराज श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना स्वकीये "श्री वेङ्कटेश्वर" स्टीम-यन्त्रागारे मुद्रयित्वा प्रकाशितम्। संवत १९६२, शके १८२७॥

अध्याय श्लोकादि की संख्या का मिलान इसी पुस्तकसे ठीक होगा,क्योंकि भिन्न २ संस्करणों में भेदहोजाना असंभव नहीं। जैसा कि हमने परिशिष्ट में श्रोप. ज्वाला प्रसाद जी मिश्र की प्रति से इस प्रतिका भेद दिखाया है।

प्रकृत आलोचना बहुत परिश्रमसे लिखीगई है। इस में प्रसंग से आरंभ में ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रकाश डालने का यत्न

किया गया है। उस पर अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है। तो भी इस में ठीक दिशा का अनुसरण किया गया है।

पुराण अठारह या उन्नीस

ब्राह्मं[1] पुराणं प्रथमं पाद्मं[2] वैष्णवमेव[3] च।
शैवं[4] भागवतं[5] चैव भविष्यं[6] नारदीयकम्[7]॥
मार्कण्डेय[8] मथाग्नेयं[9] ब्रह्मवैवर्त्तमेव[10] च।
लैंगं[11] तथा वाराहं[12] स्कान्दं[13] वामनमेन[14] च।
कौर्म्मं[15] मात्स्यं[16] गारुडं[17] च वायवीयमनन्तरम्[18]।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति[19] संज्ञितम्॥

ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, भविष्य, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म्म, मत्स्य, गरुड़, वायु और ब्रह्माण्डपुराण।

पाठक! ध्यान से गिनिए, पुराणों की गिनती १८ होती है या १९। भागवत से श्रीमद्भागवत समझें या देवी भागवत, यह तो झगड़ा था ही, किन्तु यह तो संख्या का झगड़ा पड़ गया। पुराणकारने 'अष्टादशं' विशेषण किसके लिए प्रयोग किया है? प्रतीत तो 'ब्रह्माण्ड' के लिए होता है किन्तु वह तो गिनती में १९ वां बनता है। पुराणतत्त्वविशारद कोई पौराणिक इसके समाधान का यत्न करे।

कूर्म्मपुराण की परम्परा

श्रुत्वा नारायणाद्देवान्नारदो भगवानृषिः॥
गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः॥ १४०॥

पराशरोपि भगवान् गङ्गाद्वारे मुनीश्वराः ॥
मुनिभ्यः कथयामास धर्म्मकामार्थमोक्षदम् ॥१४१॥
कू० पु० उ० ४६ अ० १४०-१४२

(यह पुराण) नारायण देव से सुनकर भगवान् नारद ऋषि ने पहले गौतम को दिया, उससे पराशर ने प्राप्त किया। हे मुनिश्वरो! भगवान् पराशर ने भी गंगाद्वारमें यह धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष के देने वाला पुराण मुनियों को सुनाया ॥

इसके साथही नीचे लिखा है-

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय धीमते ॥
सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १४२ ॥
सनकाद्भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः ॥
अवाप्तवान् पंचशिखो देवलादिदमुत्तमम् ॥ १४३ ॥
सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः ॥
एतत्पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम् ॥ १४४ ॥
तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवतां पापप्रणाशनम् ।१४५।
ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिकेजने ॥ १४६ ॥
कू० पु० उ० ४६ अ०

सर्वार्थ संग्रहरूप इस श्रेष्ट तथा सर्व पाप नाशक पुराणको पहले ब्रह्मा जी ने सनक तथा सनत्कुमार के प्रति उपदेश किया, सनक से साक्षाद् भगवान् योगिश्रेष्ठ देवलने प्राप्त किया। देवलसे इसे पंचशिख ने प्राप्त किया। और सनत्कुमार से भगवान् सत्यवती-

पुत्र व्यास मुनिने प्राप्त किया। व्याससे मैंने तथा मैंने आपको यह पाप नाशक पुराण सुनाया। आप धार्मिक मनुष्यको दें।

इस प्रकार दो परम्पराएं बनती हैं।

इन दोनों में कौनसी ठीक है, इसका भी निर्णय पौराणिकोंको करना चाहिए।

पुराण शब्द

श्री पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र जी तथा उन ऐसे दूसरे पुराणमण्डन-तत्पर सनातनधर्माभिमानी सज्जन जहां कहीं भी 'पुराण' शब्द देखते हैं, उस का अर्थ 'अष्टादश पुराण' लगते हैं, इसी मनो-वृत्ति के कारण अथर्ववेद में आए पुग शब्द के साथ उन्हों ने

घोर अन्याय किया है, उसका निराकरण हम ने परिशिष्ट में कर दिया है। हमारा पक्ष है कि प्रकरणानुसार शब्दों का अर्थ करना चाहिए। यदि आप के मन्तव्यानुसार सब जगह 'पुराण' शब्द का अर्थ ब्रह्मवैवर्त्तादि ही है, तो कूर्म्म जी की स्तुति में कहे गए इस श्लोक का क्या अर्थ कीजिएगा।

नमोस्तुते पुराणाय हरये विश्वमूर्तये।
सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये॥

कू० पु० १ अ० । ७०

क्या यहां भगवान् कूर्म्मरूपधारी को ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण बनाईएगा।

हमारा यह आशय कदापि नहीं कि पुराणों में कोई काम की वस्तु नहीं। अपितु हमारी दृढ़ धारणा है, कि पुराणों में हमारे इतिहास की बहुत सी सामग्री सुरक्षितहै, जो अन्यन्त्र नहीं मिलती किन्तु वह इतनी अस्तव्यस्त है, कि उसके लिए महान् अध्यवसाय तथा अश्रान्त उद्योग की आवश्यकता है।

अन्तमें सहृदय सदय पाठकों से निवेदन है, कि जिस प्रकार हमने पक्षपात रहित होकर पुराण से उपलब्ध सामिग्री का दिग्दर्शन कराने का यत्न किया है, उसी प्रकार आप भी किसी प्रकार के आवेश से रहित होकर इस का अवलोकन कर सत्य का ग्रहण तथा असत्य का परित्याग करें। भगवान् हम सबको सत्य का मार्ग दिखाएं--

"सा मा सत्योक्तिः परिपातु सर्वतः"

विद्वदनुचार

वेदानन्दतीर्थ

ओ३म्

कूर्म पुराणालोचन

पुराणों के सम्बन्ध में इस समय बड़ा विवाद है। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि 'पुराण' शब्द से पूर्व काल में क्या जाना जाता था। इस विचारास्पद विषय पर अनेकानेक विद्वानों ने अपने २ विचार प्रकट किए हैं। कूर्मपुराणालोचना के पाठकों के लिये इतना ही कथन पर्य्याप्त न होगा इस लिये इस पर स्वबुद्धि के अनुसार कुछ विचार स्थिर करना आवश्यक जानकर निवेदनहै कि यह पुराण शब्द अथर्ववेद तथा उसके ब्राह्मण 'गोपथ' में निर्देश किया गया है और उस पर वर्तमान युग के वेदाचार्य महर्षि दयानन्द जी ने अच्छी प्रकार अपने विचार प्रकट कर दिये हैं। उससे ही पुराण पद का आरम्भ हुआ। उस पर गोपथब्राह्मणकार ने इस प्रकार वर्णन किया है कि अङ्गिरा ऋषि ने बड़ा तप किया उस तप से सन्तप्त होकर पांच वेदों को बनाया जिन के नाम इस प्रकार हैं सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद, और पुराणवेद। वेदवेत्ता विद्वान् पुरुषोंका विचार है कि यह पांच वेद अथर्ववेद के उपवेद हैं। पर अथर्ववेद में

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसी श्चानु व्यचलन्।

अथर्व. १५. ३०. १.

यह सब नाम इतिहास, पुराण, गाथा, नाराशंसी आदि प्रसिद्ध हैं। इस पर अथर्ववेद के गोपथ ब्राह्मण में अङ्गिरा ऋषि द्वारा इतिहासवेद तथा पुराणवेद का निर्माण किया जाना कोई असंगत

प्रतीत नहीं होता, इस लिये यह कथन कि पुराण परम्परा से चले आते हैं कोई असंगत कथन नहीं है।

महर्षि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में 'पुराण' शब्द के अर्थ करते हुए लिखते हैं कि "जिसमें जगत की उत्पत्ति आदि का वर्णन है उस ब्राह्मणभाग का नाम पुराण है" इस समय व पुराण जो पूर्वाचार्य्यों ने बनाए थे सर्वथा लुप्त हो गए हैं। उनके स्थान पर इस समय ब्रह्मवैवर्तादि १८ पुराण मिलते हैं। जिनमें एक का नाम कूर्मपुराण है। यहां पर विचार यह उत्पन्न होता है कि इस कूर्म पुराण का प्रवक्ता कौन हुआ है जहां पर यह प्रवचन मिलता है कि "अष्टादश पुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः" अर्थात १८ पुराणों के कर्ता सत्यवती के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासजी थे, वहां पर कूर्म पुराण स्वयं अपने विषयमें कहता है:--

ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः ।
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः ॥
पृष्टःप्रोवाच सकलं पुराणं कौर्म्ममुत्तमम् ।

पूर्वार्द्ध. अ. १. श्लो १२७।

भगवान् कूर्म्म रूपी विष्णु जनार्दन ने रसातल पहुंचकर नारदादि महर्षिओं के प्रश्न करने पर सम्पूर्ण कूर्म्म पुराण को सुनाया।

फिर दूसरे स्थान पर इसकी पुष्टि की है कि

इदं पुराणं परमं कौर्म्मं कूर्म्मस्वरूपिणा ।
उक्तं देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः ॥ १३१

यह परम कूर्म्मपुराण कूर्म्मस्वरूपधारी देवदेवने कथन किया है, इस पर द्विजाति-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, लोग श्रद्धा करें, अर्थात इस कथन को श्रद्धापूर्वक स्वीकार करें।

एक दूसरे स्थान पर इस कथन की फिर पुष्टि की है।

एतत्पुराणं सकलं भावितङ्कूर्म्मरुपिणा।
साक्षाद्देवाधिदेवेन विष्णुना जगद्योनिना॥

उत्तरार्द्ध. अ ३९ श्लो ७९

यह सम्पूर्ण कूर्म्मपुराण कूर्म्मरूपी साक्षात् देवाधिदेव विष्णुने, जो सर्व जगत् का कारण है कथन किया था॥

इत्यादि कूर्म्म पुराण के अनेक वचनों से यही निश्चय होता है कि कूर्म्म पुराणका प्रवक्ता स्वयं कूर्म्म देहधारी विष्णु ही था। नकि सत्यवती का पुत्र व्यास।

एक और स्थान पर सूतजी जिन को सर्व पुराणों का प्रवक्ता कहा गया है, स्वयं कूर्म्म पुराण में कथन करते हैं कि

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम्।
देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम्॥

उत्तरार्द्ध. अ० ३८ श्लो० ७९

मैंने देवदेव की चेष्टा को तुम से सम्पूर्ण वर्णन कर दिया है जो मैंने पुराण में पूर्व सुना था॥

इन प्रमाणों के उपस्थित होते हुए कौन कह सकता है कि यह पुराण व्यास का बनाया हुआ है। तत्वदृष्टि से यदि विचारा जावे, तो पता चलता है कि यह सब कथनमात्र ही है। यह सब प्रवक्ता ही हैं। कर्ता का नाममात्र कभी विष्णु रखा गया है, कभी सूत जी और कहीं कहीं-व्यास गीता का प्रवचन व्यास के नाम से किया गया है इस लिये निश्चयात्मिक यह कहना कि यह किसी एक पुरुष का बनाया हुआ ग्रन्थ है कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है इसी कारण विद्वानों की सम्मति माननी ही पड़ती है कि न केवल कूर्म्मपुराण

प्रत्युत सम्पूर्ण पुराण किसी एक व्यक्ति के बनाए हुए नहीं। और नहीं एक काल के बनाए हुए हैं। समय समय पर कथा के प्रवक्ता संस्कृत के कवियों ने अपने श्रोताओं की इच्छानुसार श्लोक बनाकर पुस्तकाकार कर दिए, जिनको इस समय भिन्न २ पुराणों तथा उपपुराणों के नाम से माना जा रहा है।

प्रत्येक पुराण में कतिपय गाथाओं को छोड़ कर प्रत्येक पुराण में वही गाथाएं आती हैं जिनको भिन्न २ प्रकार से प्रवक्ता की इच्छानुसार प्रवचन किया गया है। एक विशेष व्यक्ति को वार वार उसी कथा को वर्णन करने का कोई तात्पर्य्य नहीं था और नहीं होना उत्तम ही है।

इस सर्व कथन से यही निश्चय है कि इस कूर्म्मपुराण का प्रवक्ता कोई एक व्यक्ति नहीं और नहीं व्यास।

कृष्ण द्वैपायन व्यास और पुराण

यद्यपि यह निश्चय नहीं हो सकता कि कूर्म्म पुराण का प्रवक्ता अथवा कर्त्ता व्यासजी हुए हैं, तो भी व्यास जी को पुराण से पृथक् नहीं किया जा सकता। वर्तमान सर्व पुराणों में प्रत्येक ने प्रयत्न किया है कि वह अपने आपको व्यास जी की कृति सिद्ध करे, तत्वत: जो निर्विकल्प सिद्ध सिद्धान्त है वह यह है, कि वेद व्यास ने एक पुराण संहिता को बनाया। महाभारत तथा अन्य पुराणों के पाठ से यही निश्चय होता है, परन्तु वह पुराण संहिता कौनसा ग्रन्थ था, यह जानना अत्यन्त कठिन है। बहुतों का यह पक्ष है कि व्यास जी ने केवल महाभारत को बनाया और उसी को पुराण संहिता नाम देकर अपने शिष्य लोमहर्षण को पढ़ाया, यतः विष्णु पुराण में भी यही लिखा मिलता है

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥१६॥

विष्णु पुराण अंश ३ अ० ६ श्लो १६ ।

आख्यानों तथा उपाख्यानों सहित तथा गाथा कल्पशुद्धि सहित पुराणार्थ को उत्तमतया जानने वाले व्यास मुनि ने पुराण संहिता का निर्माण किया । और

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै लोमहर्षणः ।
पुराणसंहिता तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥१७॥

व्यास जी ने उस पुराण संहिता को अपने प्रसिद्ध शिष्य लोमहर्षण नाम वाले सूत को दे दिया, अथवा उसको पढ़ाया ।

इसी प्रकार अग्नि पुराण में भी लिखा मिलता है कि

प्राप्य व्यासात् पुराणादि सूतो वैलोमहर्षणः ।

लोमहर्षण सूत ने पुराण संहिता को व्यास जी से प्राप्त किया था ।

महाभारत के आदिपर्व में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि लोग लोमहर्षण से प्रार्थना करते हैं कि व्यास कृत पुराण संहिता हम को सुनाइयेगा ॥

ऋषयः ऊचुः द्वैपायनेन तत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा ।

इस से ज्ञात होता है कि व्यास जी ने एक पुराण संहिता को तो अवश्य बनाया था-इस लिए महाभारतसे लेकर सम्पूर्ण पुराण अपने आपको वही संहिता वर्णन करते हैं इसी रीति का अनुसरण करते हुए कूर्म्मपुराण भी ग्रन्थारम्भ में उसी भाव को प्रकट करते हुए अपने आप को आदि संहिता सिद्ध करता है ॥

तस्माद्भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्म्ममुत्तमम् ।

वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद ॥ ७ ॥
त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः ।
इतिहास पुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥ ३ ॥
भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः ।
मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा ॥५॥

लोमहर्षण उवाच ।

इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता ।
भवन्ति षट्सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्या ॥२३॥
ब्राह्मणाद्यैरियं धार्य्या धार्मिकैर्वेदपारगैः ।
तामहं वर्णयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा ॥२६॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं पुण्या दिव्या प्रासङ्गिकी कथा ॥२५॥

पूर्वार्द्ध० १ अ०

महर्षिगण प्रश्न करते हैं कि—हे पुराणार्थविशारद (निपुण) आप कृपा करके कूर्म्म पुराण का प्रवचन करें, क्योंकि आप ने भगवान् व्यास जी की अच्छी प्रकार से इतिहासपुराण के जानने के लिए सेवा शुश्रूषा की है और आप को ही भगवान् व्यास ने पौराणिकी संहिता प्रदान की थी। जिस के उत्तर में लोमहर्षण ने कथन किया कि यही कूर्मपुराण वाली ब्राह्मी संहिता है जो चारों वेदों से सम्मित है और जिस के ६००० श्लोक हैं जिस को धर्मात्मा वेद पारग ब्राह्मणादिकों को धारण करना चाहिए और उसी को व्यास जी ने पूर्व प्रवचन किया था। उसी को मैं आप के प्रति वर्णन करूंगा। 'सर्गश्च प्रति सर्गश्च' इत्यादि श्लोक में पुराण के लक्षण भी कर दिए हैं और साथ ही यह भी निश्चय

कराया है कि कूर्म्मपुराण पर यह लक्षण अच्छी प्रकार घटते हैं ।

इस पुराण की आलोचना करते हुए प्रत्येक स्थान पर विस्तारपूर्वक लिखा जावेगा कि यह लक्षण कहां तक इस पुराण पर (संगत) घटते हैं स्वयं पाठक विद्वान् पढ़कर निश्चय करें ।

वेद और व्यास

भागवतादि पुराणों में वेद विषयक लेख विस्तारपूर्वक मिलते हैं, जिन में वेदों के प्रति श्रद्धाबुद्धि को हटाना ही इष्ट प्रतीत होता है—भागवत के प्रथम स्कन्द तथा द्वादश स्कन्द में विस्तृत लेख दिया है कि प्रथम वेद एक था और व्यास भगवान् ने उस के ऋग्, यजु,साम और अथर्व यह चार विभाग करके, पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्त नाम के चार शिष्यों को यथाक्रम पढ़ाये और उन चारों ने इन्द्रप्रभृति आदि अपने शिष्यों को यथारुचि विभाग करके पढ़ाया और उन्हों ने विभाग करके फिर अपने शिष्यों को । इस प्रकार शिष्य प्रशिष्य परम्परा में विभक्त हो कर फैल जाने के कारण वेद रूपी वृक्ष की स्कन्धादि क्रम से अनेक शाखाएं हो गईं ॥

इसी प्रकार का विस्तृत लेख विष्णु पुराण के तृतीयांश के चतुर्थ अध्याय से ले कर कई अध्यायोंमें मिलता है, सारांश बहुत से पुराणों में प्राय: एक सा ही है । परन्तु इन सब से भिन्न कूर्म्मपुराण में वेद विषय श्रद्धा का भाव बहुत कुछ अधिक मिलता है ।

जहां भागवत तथा विष्णु पुराण में स्पष्ट लिखा गया है कि वेद पूर्व एक था वहां कूर्म्मपुराण में इसके विपरीत स्पष्ट लिखा है ।

नान्यतो जायते धर्म्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थं श्रद्धया वेदमाश्रयेत् ॥पू.अ.१२.२५६.

ममवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजुःसामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्तते ॥२६७॥
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन् विविधानि तु।
श्रुति स्मृति विरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥२६१॥
शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च।
ज्योतिः शास्त्राध्यात्मविद्या मीमांस चौपबृंहणम्॥२७०॥
एवं चतुर्दशैतानि तथा हि द्विजसत्तमाः।
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते ॥२७१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत् ॥२७४॥

इसका स्पष्टार्थ इस प्रकार है।

धर्म का विस्पष्ट बोध वेद से ही प्राप्त होता है कोई और साधन धर्म के जानने का प्रतीत नहीं होता इसी कारण मुमुक्षु पुरुष धर्म्म के लिये श्रद्धा पूर्वक वेद का ही आश्रय ले।

यह मेरी वेद नाम वाली पुरातन उत्तम शक्ति है जो ऋग्, यजु, साम रूपसे सर्गके आरम्भमें प्रकट होती है, इन चारों वेदोंके अतिरिक्त श्रुति और स्मृति के विरुद्ध जितने शास्त्र इस लोक में अनेक प्रकार के मिलते हैं वे सब तमोगुण प्रधान हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त,छन्द, ज्योतिष्, मीमांसा आदि १४ प्रकार की विद्या के प्रतिपादनार्थ जितने शास्त्र हैं वह वेद के सहायक हैं परन्तु इनमें धर्म्म का नाम नहीं, इस लिये पूर्ण प्रयत्न से धर्म की प्राप्ति के लिये वेद का आश्रय करे क्यों कि धर्म पूर्वक ज्ञान ही ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन है।

दूसरे स्थान पर कैसा स्पष्ट वर्णन किया गया है—

गुप्तये सर्व देवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्वभौ ॥
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ॥
पू० अ० २ श्लो० २७।

ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया।
अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ॥२८॥
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्व्वा प्रवृत्तयः।
अतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित्॥२९
न तेषु रमते धीरः पाखण्डी तेन जायते।
वेदार्थवित्तमैः कार्य्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ॥३०॥
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः।
या वेद वाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ॥३१॥
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥३२॥

भावार्थ—सम्पूर्ण दिव्य पदार्थों तथा विद्वानों की रक्षाके लिये यज्ञ तथा ऋग्, यजु, साम और अथर्व चारो वेदोंका विधान किया गया है। जो कि ब्रह्मका सहज रूप, नित्य अव्यय शक्ति है जो अनादि, नाश रहित स्वयम्भु से वाग् रूप वर्णन की गई है। उस से भिन्न जितने शास्त्र इस पृथिवी पर दिखाई देते हैं वे सब आदि वेद से ही आश्रय लेकर निर्माण किए गए हैं, उन ग्रन्थों में धीर पुरुष मन नहीं लगाते क्यों कि उनके पठन पाठन से मनुष्य पाखण्डी बन जाते हैं। वेद से भिन्न मन्तव्य ग्रन्थ वे हैं जो वेदार्थ के जानने वाले मुनि लोगों ने बनाये हैं,जिनको स्मृति नाम दिया गया है,उसी को परम धर्म जानना चाहिये। उनके अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों को

कदापि नहीं मानना चाहिये। और जो स्मृतियां वेदविरुद्ध हैं और जो कुबुद्धि के उत्पन्न करने वाली हैं, वे सर्व निष्फल और त्याज्य हैं क्यों कि वे तमोवृत्ति के उत्पन्न करने वाली हैं ॥

जहां भागवत और विष्णु पुराण में एक वेद के ४ भाग करने वाला व्यास माना जाता है जैसा कि पराशर जीने विष्णु पुराण के ३ अंश के चतुर्थ अध्याय के आरम्भ में लिखा है कि

ततोत्र मत्सुतो अष्टाविंशतमेंतरे ।

वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्द्धा व्यभजत्प्रभुः ॥ २ ॥

मेरे पुत्र प्रभु कृष्णद्वैपायन ने इस मन्वंतर के २८ वें युग में चतुष्पाद एक वेद को चार भागों में बांट दिया, अर्थात् ऋग्, यजु साम, और अथर्वण नाम से कृष्णद्वैपायन व्यासने एक वेद को चार भागों में विभक्त कर दिया ।

यही भाव भागवत आदि पुराणों से स्पष्ट विदित होता है परन्तु कूर्म्मपुराण चारों वेदों का सर्गके आदि में होना मानता है और कृष्णद्वैपायन का चारों वेदों को जानने के कारण 'व्यास' नाम पड़ा, जैसा कि लिखा है ॥

पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः ।

तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत्प्रभुः॥पू.अ.५२.श्लो११

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान्

जैमिनिश्च सुमन्तुश्च वैशम्पायनमेव च ॥१२॥

पैलं तेषां चतुर्थश्च पञ्चमं मां महामुनिः ।

ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः ॥१३॥

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेवच ।

जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सो ऽन्वपद्यत ॥१४॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत् ॥१५॥

अर्थात्—पराशर मुनि के पुत्र कृष्ण द्वैपायन महायोगी हरिप्रभु ने उसकी (रुद्रकी)कृपासे चारों वेदोंको आद्योपान्त सम्पूर्ण अध्ययन किया और चार वेदपारग शिष्यों को ग्रहण किया जिन के नाम जैमिनि सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल थे। और सूतजी कहते हैं कि पांचवां शिष्य मैं हूं। पैल को ऋग्वेद,वैशम्पायन मुनि को यजुर्वेद, जैमिनि को सामवेद और सुमन्तु ऋषिवरको अथर्ववेद पढ़ाया और इतिहास पुराण के कथनार्थ मुझे नियुक्त किया ॥

वेद और शाखा

विद्वानों के समक्ष यह एक विवादास्पद विषय है। इस लिये मेरा विचार है कि मैं इस पर अपनी शक्ति के अनुसार विचार करूं ॥

आज कल आर्य्यसमाज के नामधारी विद्वान् इस विषय में अनेक प्रकार से विचार कर रहे है परन्तु जो पुस्तक इस विषय में लिखी जाचुकी है वह वेदसर्वस्व के नाम से स्वामी हर प्रसाद वैदिक मुनि की ओर से छपी हुई आर्य्य जगत् में पढ़ी जाती है। जिसमें वर्तमान वैदिक आचार्य्य महर्षि दयानन्दजी पर बहुत कुछ उपहास और आक्षेप किया गया है यद्यपि उन की यह पुस्तक और अन्य संग्रहीत पुस्तकों के पढनेसे यह ज्ञात होता है कि स्वामी हर-प्रसाद जी प्रत्येक विषय में गुणी और अच्छे सुबोध हैं। परन्तु उनका वैदिक मुनि लिखना कुछ जंचता सा प्रतीत नहीं होता।

"स्वामी दयानन्दका मत है कि यज्ञ कर्म की सुविधा के लिये

ऋचामन्त्र उद्धृत किये गए हैं..............यह निर्णीत बात है कि ऋचामन्त्र स्तुतिके व्याजसे पदार्थ विद्याका और यजुर्मन्त्र यज्ञ आदि कर्मोंका प्रतिपादन करते हैं यदि दोनोंको मिला दिया जाये तो कोई संगत अर्थ कदापि प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, यही कारण है कि यजुर्वेदके वर्तमान भाष्य याज्ञिकोंको प्रिय होने पर भी सर्वजन प्रिय नहीं हैं, और जो कोई भाष्य याज्ञिक पद्धतिसे नहीं किया गया वह और भी भद्दा है क्यों कि कर्मकाण्डका प्रतिपादन उसमें यत्किंचित् भी नहीं। परस्पर असंगत इतना है कि देखने को चित्त नहीं चाहता"।

इस प्रकार अपमानयुक्त शब्दोंको लिखनेवाला आर्य्यसमाज के अन्दर न जानें किस प्रकार प्रतिष्ठादृष्टिसे देखा जा रहा है और फिर केवल कथन मात्रसे वैदिक आचार्य्य पर लिखना कुछ शोभा नहीं देता, यद्यपि आपने षट् दर्शनों पर भाष्य लिखे हैं तथापि यदि पठन पाठनसे विचार किया जावे तो पूर्वाचार्य्योंके भाष्यसे जहां तहां चुराए हुए पदों और पंक्तियोंके संग्रहका नाम नवीन भाष्य रखना उपहास मात्रसे अधिक प्रतीत नहीं होता। अस्तु अब मैं उनके शाखा विषयक लेखों पर विचार करनेकी चेष्टा करूंगा।

महर्षि दयानन्दके वेदभाष्य भूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश में उद्धृत ११२७ वेदकी शाखाओं पर लिखते हुए आप श्री० पं० सत्यव्रतजी सामाश्रमीकी सहायतासे उपहास करते हैं।

"हन्त,! का नाम संहिता शाखेति व्यपदेश शून्या तेन महात्मनोररि कृता यस्या मूलवेदत्वं मत्वा शाखेति प्रसिद्धानामन्यासां तद्व्याख्याग्रन्थत्वं मन्तव्यं भवेदिति स्वरमाकमज्ञेयमेव।

आश्चर्य ! कौन वह मूल संहिता (शाखा) इस नामसे न कही जानेवाली उस महात्माने स्वीकार की है जिसको मूल वेद मानकर "शाखा" इस नामसे प्रसिद्ध अन्य सब संहिताओंको उस का व्याख्यान ग्रन्थ माना जाये उस (मूल वेद संहिता) का पता हमको तो अद्यावधि नहीं है।

इसका तात्पर्य स्पष्ट शब्दोंमें यह है कि आजतक जितने वेद ऋग् यजुः, साम और अथर्व नामसे मिलते हैं वह किसी न किसी शाखाके नाम से युक्त ही मिलते हैं। अर्थात् जिसको ऋषि दयानन्द ऋग्वेद कहते हैं, उसको लोक में शाकलसंहिता कहते हैं। और यजुर्वेदको वाजसनेय यजःसंहिता, सामवेदका नाम कौथुमी सामवेद संहिता और अथर्ववेदका नाम शौनकसंहिता है। इसलिए जब शाखओं से अतिरिक्त वेद ही नहीं, तो किस शाखा को मूल वेद मानकर शेषका व्याख्यान माना जावे। स्वामी दयानन्द को शायद कोई इनसे भिन्न वेद मिला होगा। सत्यव्रतजी लिखते हैं और उनके अनुयायी (इस अंश में) स्वामी हरप्रसाद जी भी यही निश्चय करते हैं कि "जब यह प्रत्यक्ष देखने में आता है कि सब शाखा ग्रन्थोंमें कोई ग्रन्थ व्याख्यान और व्याख्येय नहीं है, किन्तु क्वाचित्क पाठभेद और पाठ न्यूनाधिक को छोड़कर सब एक दूसरेके समान है तब ग्यारह सौ इकतीस में चार व्याख्येय और शेष ग्यारह सौ सताईस व्याख्यान हैं यह कल्पना करना और मानना कैसे समञ्जस कहा जा सकता है वास्तव में महाभाष्य कृत पतञ्जलि मुनिका उल्लेख शाकलादि प्रवचन कर्त्ता ऋषियोंके भेदसे वेदोंके ग्यारह सौ इकतीस भेदोंको कहता है उसको स्वामी दया-नन्दके शाखापद के अर्थ का आधार मानना अथवा मानने का साहस करना भूल है"। प्राचीन अथवा नवीन ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे

यह बात निर्विवाद है कि "शाखा" पदका अर्थ 'चरण' है। जिसपर अब विचार किया जाता है, मूलका पाठ इस प्रकार है:—

आकृतिग्रहणाज्जातिर्लिङ्गानां च न सर्वभाक् ।
सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या गोत्रं च चरणैः सह ॥

जिस पर कैयट जो इस प्रकार लिखते हैं—

चरणशब्दोऽध्ययनवचनः इह तूपचाराद्ध्येतृषु वर्तते ।

जो ब्राह्मणादि ब्रह्मचारी विशेष २ शाखाका प्रवचन, अध्ययन करते हैं उनके नामके साथ उसका व्यवहार किया जाता है और यही भाव आख्याप्रवचनात् ॥ (मी. १. १. ३०) मीमांसासूत्र का भी प्रतीत होता है, अर्थात् प्रवचनके कारण नाम रखा गया है। पुराणों पर विचार करते हुए प्रथम मूलकी ओर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि वही स्वामी हरिप्रसादजीका आधार भूत है।

एक शतमध्वर्यु शाखा, सहस्र वर्त्मा सामवेदः ।
एक विंशतिधा वाहृच्यं, नवधाऽथर्वणोवेदः ॥

यह महाभाष्यके पस्पशान्हिक का वचन है। जहां पर पतञ्जलि ऋषि शब्दोंके प्रयोग विषय पर व्याख्यान करते हुए लिखते हैं कि:

सप्त द्वीपा वसुमती त्रयोलोकाश्चत्वारो वेदाः
साङ्गाः सरहस्या वहुधा भिन्नाः,
एक शतमध्वर्य्यः शाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदाः
एक विंशतिधा वाहृच्यं नवधा अथर्वणो वेदः
वाको वाक्यमितिहासपुराणम् वैद्यकमित्येतावच्छब्दस्य प्रयोगविषयः ।

इस से स्पष्ट विदित होता है कि सातों द्वीपों और तीनों लोकों में शब्द प्रयोग की आवश्यकता है। अर्थात् इस पृथिवी के सातों भागों और तीनों लोकों मनुष्य, पितृ और देव में यही वाणी बोली जानी आवश्यक है। और चारों वेदों का वर्णन करते हुए वर्णन किया है कि यद्यपि मूल चारों वेद हैं। परन्तु जब इनके अङ्गों और रहस्यों पर विचार करते हुए पठन पाठन आचरण अध्ययन तथा अध्यापन का ध्यान किया जावे तो "बहुधा भिन्नाः" अनेक प्रकार के भिन्न २ हो जाते हैं जिस को इस प्रकार विशेष रूप से वर्णन करते हुए कहते हैं कि एक सौ एक प्रकार का यजुर्वेद और एक हजार प्रकार का सामवेद और २१ इक्कीस प्रकार का ऋग्वेद और ९ नौ प्रकार का अथर्ववेद है अर्थात् सब मिला कर ११३१ प्रकार के वेद शब्द के विषय हैं जिन का पठन पाठन लोक में प्रचलित है और उस के अतिरिक्त 'वाकोवाक्य, अनेक प्रकार की लोक प्रसिद्ध गाथाएं, इतिहास के ग्रन्थ, पुराण के ग्रन्थ और वैद्यक शास्त्र इत्यादि सब में शब्द का विस्तारपूर्वक प्रयोग किया जाता है इत्यादि।

इस से अच्छी प्रकार ज्ञात हो जाता है कि यही चारों वेद ११३१ प्रकार के होकर पातञ्जल ऋषि के समय पठन पाठन विधि में प्रचलित थे।

इतना विचार करने के पश्चात् पुराण और विशेष कर के कूर्म पुराण के आधार पर प्रकट करना चाहता हूं कि यह ४ चार वेद इतने प्रकारके किस भांति हो गए। कूर्म्म पुराणके पूर्वार्द्ध के अध्याय ५२ में इस प्रकार लिखा है कि जब व्यास महामुनि ने चारों वेदों के प्रचारार्थ ४ शिष्यों को चुना तो उसने पठन पाठन के नियम को स्थिर करने के लिये इस प्रकार आरम्भ किया।

एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत्।
चतुर्होत्रमभूत्तस्मिँस्तेन यज्ञमथाकरोत् पू. अ. ५२ श्लो १६
आध्वर्य्यवं यजुर्भिः स्यादग्निहोत्रं द्विजोत्तमाः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ॥१७॥
ततः सत्रे च उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः
यजूंषि तु यजुर्वेदं साम वेदन्तु सामभिः ॥१८॥
एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा ।
शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत् ॥१९॥
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रविभेद सः
अथर्वाणमथो वेदं विभेद नवकेन तु ॥२०॥
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः ॥२१॥

इस का भावार्थ इस प्रकार है ॥

यजुरूप एकही वेद था जिसको चतुर्द्धा बनाया और उनसे चार प्रकार यज्ञ को निर्माण किया, अध्वर्यु के अग्निहोत्र को यजुर्वेद द्वारा, औद्गात्र को साम वेद द्वारा, और ब्रह्मत्व को अथर्व वेद से किया। तब यज्ञ में ऋग्वेद को उद्धृत किया और यजुओं का नाम यजुर्वेद रखा और 'सामानि' को साम वेद नाम से प्रकथन किया। इस प्रकार २१ प्रकार का ऋग्वेद बनाया, और यजुर्वेद शाखा रूप से १०० प्रकार का और शाखा भेद से साम वेद १००० एक हजार प्रकार का और अथर्व वेद ९ प्रकार का बना दिया सो यह वेद चतुष्पाद पुरातन सब से पूर्व है ॥

कूर्म्म पुराणमें दूसरे स्थान पर इस प्रकार वर्णन किया गया है—

वर्णाश्रमव्यवस्थां च त्रेतायां कृतवान्प्रभुः ॥
यज्ञ प्रवर्तनञ्चैव पशुहिंसाविवर्जितम् ।
द्वापरेऽप्यथ विद्यन्ते मति भेदास्तथा नृणाम्॥पू.अ.२०श्लो.४२
रागो लोभस्तथा युद्धं मत्वा बुद्धिविनिश्चयम् ।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रिधा त्विह विभाव्यते ॥४३॥
वेदव्यासैश्चतुर्द्धा च व्यस्यते द्वापरादिषु ।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥४४॥
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययै ।
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां प्रोच्यन्ते परमर्षिभिः ॥४५॥
सामान्योद्भावना चैव दृष्टिभेदैः क्वचित्क्वचित्
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानि च ॥४६॥

जिस का भावार्थ इस प्रकार है ॥

त्रेतायुग में भगवान् ने वर्णाश्रम और हिंसारहित यज्ञ चलाए।

द्वापर काल में पुरुषों को मति भेद से राग, लोभ तथा युद्ध और बुद्धि निश्चय होता है। इस युगमें एक वेद को चतुष्पाद अथवा त्रिपाद अर्थात् तीन प्रकार का वर्णन करने लगे, वेदव्यास ने तो द्वापरादि में चारों वेदों का ही वर्णन किया है परन्तु ऋषि पुत्रों ने ज्ञान के विभ्रम से वेदों को भिन्न भिन्न कर दिया। कहीं पर मन्त्रों के साथ ब्राह्मण भाग को जोड़ दिया और कहीं पर स्वर के भेद और कहीं पर वर्णों के भेद से ऋग् यजु साम वेद को अनेक प्रकार भिन्न भिन्न कर दिया। कहीं २ दृष्टिभेद अर्थात् व्याख्या भेद से और सामान्य उद्भावनाद्वार ब्राह्मण तथा कल्प सूत्रों को ब्रह्म (वेद) प्रवचन से सम्मिलन करने से अनेक रूपमें वेदों का भेद किया गया है।

जिस का स्पष्टार्थ यह है कि भिन्न २ ऋषियों तथा ऋषि पुत्रों ने अपने २ भावोंको मुख्य रखते हुए वेदोंमें वर्णों तथा स्वरों अथवा ब्राह्मण वाक्यों और कल्पसूत्रों को मन्त्र संहिता के साथ मिला कर वेदों की अनेक शाखाओं का निर्माण किया है ।

इससे स्पष्ट है कि वेदों के मन्त्रों को कई प्रकार तोड़ा और मरोड़ा गया। कहीं पर क्रम को बदला गया, वर्णों, शब्दों तथा स्वरोंके विपर्य करने से अर्थात् मूलवेद के शब्दों को, स्वरों आदि के बदल देने से अपने इष्ट को सिद्ध करने के लिये एक नई शाखा बनाई गई जिसका नाम इस ऋषि अथवा ऋषिपुत्र के नाम पर प्रचिलित हुआ। और कई एक स्थलों में मन्त्रों के साथ ब्राह्मण वाक्यों को विन्यस्त किया गया इस प्रकार परिवर्तन करने से वह मन्त्र अन्य के अन्य हो गए।

प्रश्न यह है कि यह भेद क्यों किया गया, कुछ न कुछ इसका तात्पर्य्य था। "प्रयोजनंविना मंदोऽपि न प्रवर्तते" यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है। वे ऋषि थे, ऋषि पुत्र थे, कुछ ऐसे वैसे मूढ़बुद्धि तो थे ही नहीं, इससे यह अवश्य निकलता है कि मूल मन्त्रके भावको अपनी इच्छानुसार प्रकट करने के लिए उस २ मन्त्र में परिवर्तन किया गया, क्योंकि यदि वर्णविपर्य्य से तथा स्वर विपर्यय से अर्थ विपर्यय होना सम्भव नहीं है तो व्याकरण महाभाष्यादि उदात्तादि स्वरों के बोध के लिये सूत्र की क्या आवश्यकता थी। महाभाष्यकार ने "इंद्रशत्रु" का उदाहरण देकर इसको विस्पष्ट करके दिखला दिया है कि केवल स्वर के भेद से अर्थ भेद हो जाता है। इसी प्रकार यह सब भिन्नता अर्थों के बोध के लिये ही कीगई थी। इसी लिये महर्षि ने "प्रतिज्ञा विषय" में वेद भाष्यभूमिका में इस बात को अच्छी प्रकार दर्शाया है।

और जहां जहां ब्राह्मण शब्दों का मन्त्रोंमें विन्यास किया है वह

तो स्पष्टार्थ के बोध के लिये ही किया गया है; उदाहरण के वास्ते कठ संहितामें जितने पद अधिक दिए गए है जिनको ब्राह्मण भागके नाम से पुकारा जाता है वह स्पष्टार्थ के बोधक हैं। जिस को महर्षि ने "व्याख्यान" के नाम से कथन किया है।

"यजमानस्य पूशन्पाहि" जो यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र के अन्तिम पद हैं,कठ में यह पाठ इस प्रकार आया है,"यजमानस्य पशुपाअसि" क्या यह यजुपदों की व्याख्या नहीं है,साधारण अर्थ मन्त्र के पदों के यह हैं कि "यजमान के पशुओं की रक्षा करो" उसका कठ संहिता वाले ने यह अर्थ किया है कि 'तू यजमान के पशुओं की रक्षा करने वाला है"। कठ वाले ने अपने विचार से स्पष्ट कर दिया है कि 'हे ईश्वर तू सदैव ही यजमान के पशुओं की रक्षा करने वाला है'। मन्त्र के पद प्रार्थनापरक हैं और कठ ने उसको स्तुति परक लगाया है।

इसी प्रकार "वायवस्थ" पद का अर्थ "उपायवस्थ" करके मन्त्र को व्याख्यानसहित पढ़ दिया है।

इसी प्रकार मैत्रायणी संहिता में "ऊर्जे" पद का "सुभूताय" करके ऊर्जे के स्थान में सुभूताय पद रख दिया है इसी प्रकार "अघ्न्या" पद के पश्चात् "देवेभ्यः" पद बढ़ाया गया है जिससे अर्थ को विस्पष्ट किया गया है।

दूसरे स्थान पर "इन्द्राय भागम्" के स्थान पर "देव भागं" रखने से "इन्द्र" विशेष गुणवाची पद को छोड़ कर "देव" सामान्य गुण वाची शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे अर्थ को सर्वसाधारण पर घटाया गया है।

सामान्यतया दर्शाने का यत्न किया गया है कि शाखाओं में जो वर्णभेद स्वर भेद और ब्राह्मण-पद विन्यस्त किए गए हैं वे इस बात के द्योतक हैं कि शाखामात्र मूल मन्त्रों पर व्याख्यान हैं।

अब केवल इस बात को स्पष्ट करना है कि ११२७ शाखाएं ऋषि ने कहां से ली हैं।

इससे पूर्व निवेदन किया जा चुका है कि महाभाष्यकार "चत्वारो वेदाः" इस पद को देकर "सरहस्या बहुधा भिन्नाः" के पश्चात् ११३१ शाखाओं का लेख करते हैं जिनमें मूल चार वेद संग्रहीत हैं यदि चारों वेदों को उनसे पृथक् किया जावे, तो शेष ११२७ शाखाएं रह जाती हैं जो मूल मन्त्रों पर व्याख्यान रूप से हैं।

अब यह विचारणीय है कि महर्षि ने ऐसा क्यों लिख दिया यद्यपि ११२७ शाखाएं उपाख्यान रूप है तो भी मैं उनको वेदानुकूल होने से ही प्रमाण मानता हूं अन्यथा नहीं वे स्वामीजी महाराज अपने इस लेख को शतपथ के आधार पर लिखते हैं (शतपथ १.७.१.३) में इस प्रकार लेख मिलता है कि जिसमें इतर दो पाठों का खण्डन किया गया है जैसे

तस्मादाह वायवस्थेति, उपायवस्थेति उ हैकऽआहुः उप हि द्वितीयोऽयतीति तदु तथा न ब्रूयात् (श. १.७.१.३)

शतपथाचार्य के सिद्धान्तानुसार वह पाठ स्वीकृत नहीं। इस लिये वह लिखते हैं "तदुतथा न ब्रूयात्" ऐसा नहीं कहना चाहिये इस लिये ऋषि ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि

तथैवैकादश शतानि सप्तविंशतिश्च वेदशाखाः वेदार्थव्याख्याना अपिवेदानुकूलयैव प्रमाणमर्हन्ति॥

मन्त्र भाग की ४ चार संहिता कि जिनका नाम वेद है वे सब स्वतः प्रमाण कहे जाते हैं और उनसे भिन्न ऐतरेय शतपथ आदि प्राचीन सत्यग्रन्थ हैं वे परतः प्रमाण के योग्य हैं तथा ग्यारहसौ सत्ताइस (११२७) चारों वेदों की शाखायें भी वेदों के व्याख्यान होने

से परतः प्रमाण हैं।

अब एक और प्रश्न विचारणीय है कि शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद (तैत्तिरीय संहिता) नाम क्यों पड़ गए।

इस पर "सर्वानुक्रम" के भाष्यकार अनन्त देव इस प्रकार लिखते हैं "तेन शुक्लानि यजूंषि भगवान् याज्ञवल्क्यो यतः ाप विवस्वतः" (यतो) यस्मात् (विवस्वतः)(भगवान्) याज्ञवल्क्यः मुनिः (शुक्लानि) विशुद्धानि अपौरुषेयत्वात् वक्तृदोषऽरहितानि (यजूँषि) (प्राप) प्राप्तवान्।

इसमें (शुक्लानि) के अर्थ शुद्ध किया है क्यों कि अपौरुषेय होने से वक्ता के दोष से रहित हैं और जो वक्ता के दोष से मिले हुए हैं वह कृष्णयजुर्वेद अथवा तैत्तिरीय संहिता कहलाती है।

इसी प्रकार शुक्लयजुर्वेद का नाम शतपथ से चला है॥

आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषिं वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते॥ का. १४. ८. ५. ३

विवस्वान् ऋषिके कारण यजुर्वेद का नाम शुक्लानि 'अदित्यानि .जसने॰ ॰ाज्ञ॰ ॰ ने पढ़ा क्योंकि "सर्वानुक्रम" में लिखा है कि विवस्वान् ऋषि सब से पूर्व है कि पूर्ण यजुर्वेद का द्रष्टा हुआ है।

इषे त्वादि खमब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यत्॥

इषे त्वोर्ज्जेत्यत आरम्भो खं ब्रह्मेत्यन्तं सर्वं मन्त्रजातं विवस्वानपश्यत्, उत्सन्नं स्मृतवान् आदित्यानीमानि यजूंषिं वा आहुरिति श्रुतेः।

सम्पूर्ण मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि विवस्वान् हुआ है इस लिये इस के मन्त्रों को आदित्यानि कहा गया है।

विवस्वान् का शिष्य वाजसनेयी माता का पुत्र याज्ञावल्क्य मुनि हुआ है उसके कारण यजुर्वेद का नाम वाजसनेय यजुर्वेद पड़ा है। और अपौरुपेय होने से शुद्ध (शुक्ल) नाम हुआ जो इससे भिन्न पौरुपेय तित्तिरि ऋषि ने व्याख्यारूप तैयार किया, उस का नाम तैत्तिरीय (कृष्ण यजुर्वेद) संहिता हुआ।

सब से पुराणी शाखासंहिता यही है, इसीके पदों का खण्डन शतपथ में किया गया प्रतीत होता है।

कूर्म्मपुराण की श्लोक संख्या

वर्तमान कूर्म्म पुराण जो बम्बई में वेंकटेश्वर छापेखाने में छपा है। उसके उपक्रम में इस प्रकार वर्णन आता है—

इदन्तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्म्ममुत्तमम्।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ॥२१॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिता।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थ मोक्षदाः ॥२२॥
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मिता।
भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया ॥२३॥
यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः।
माहात्म्यमखिलं ब्रह्मन् ज्ञायते परमेश्वरः ॥२४॥ पू० अ०१

इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि कूर्म्मपुराण, पुराणों की गिनती में १५ वां पुराण है यदि पुराणों को अध्यात्मभाव से विभक्त

किया जावे तो सम्पूर्ण ४ चार भागों में विभक्त किए जा सकते हैं अर्थात् (१) ब्राह्मी (२) भागवती। (३) सौरी (४) वैष्णवी संहिता के नाम प्रसिद्ध हैं। जिन से धर्मार्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह कूर्म्म पुराण ब्राह्मी संहिता चारों वेदों के सम्मत है जिस में ६००० श्लोकों की संख्या है। जिस के द्वारा मुनीश्वर लोग धर्मार्थ काम तथा मोक्ष द्वारा परमेश्वर के सम्पूर्ण महात्म्य को जान सकते हैं।

यदि वर्तमान प्रसिद्ध पुस्तक के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के सम्पूर्ण श्लोकों को गिना जावे तो पूर्वार्द्ध के ३२४२ श्लोक और उत्तरार्द्ध के २७०२ श्लोक होते हैं। कुल मिल कर ५९४४ बनते हैं जो उपक्रम की गिनती से ५६ श्लोक कम हैं। अस्तु जब अन्य पुराणों में कूर्म्मपुराण का वर्णन पढ़ते हैं तो उससे भी दुगुने तिगुने श्लोकों का ज्ञान होता है जो इस समय नहीं मिलते—

मत्स्य पुराण में इस प्रकार वर्णन आता है।

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।
माहात्म्यं कथयामास कूर्म्मरूपी जनार्दनः॥
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन ऋषिभ्यः शक्रसन्निधौ।
अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मी कल्पानुषङ्गिकम्॥

जिस पुराण में कूर्म्मरूपी जनार्दन ने रसातल में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का माहात्म्य, इन्द्रद्युम्न के प्रसंग में इन्द्र के समीप ऋषियों के प्रति वर्णन किया था और जिस में लक्ष्मी कल्प का वर्णन हुआ है, वही अठारह सहस्र १८००० श्लोक युक्त कूर्म्म पुराण है।

इसी प्रकार नारद पुराण में कूर्म्मपुराण का विस्तार पूर्वक

वर्णन आता है—

शृणु वत्स मरीचेऽद्य पुराणं कूर्म्मसंज्ञितम् ।
लक्ष्मीकल्पानुचरितं यत्र कूर्म्मवपुर्हरिः ॥ १ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां माहात्म्यञ्च पृथक् पृथक् ।
इन्द्रद्युम्नप्रसंगेन प्राहर्षिभ्यो दयान्तिकम् ॥ २ ॥
तत् सप्तदशसाहस्रं सुचतुःसंहितं शुभम् ।
यत्र ब्राह्म्या पुरा प्रोक्ता धर्मा नानाविधा मुने ॥ ३ ॥

हे वत्स मरीचि ! लक्ष्मी कल्पानु चरित कूर्म्म नामक पुराण सुनो, जिस में कूर्म्मरूप धारी विष्णु ने कृपापूर्वक "धर्म," अर्थ, काम और मोक्ष के महात्म्य को पृथक २ इन्द्रद्युम्नप्रसंग में ऋषियों के प्रति वर्णन किया है जो कि १७००० सहस्र श्लोकों वाली सुन्दर कल्याणकारी चार संहिता युक्त है, जिस में हे मुने ! ब्रह्मसम्बन्धि, अनेक धर्मों का पूर्व वर्णन किया गया है ॥

ये दोनों प्रमाण अष्टादशपुराणदर्पण ३५६, ३७६ से दिए गए हैं।

वर्तमान कूर्म्मपुराण में श्लोकों की अध्याय पूर्वक गणना

पूर्वार्द्ध. अध्याय.	श्लोक.	उत्तरार्द्ध. अध्याय.	श्लोक
१	१३१	१	५१
२	१११	२	५६
३	२८	३	२३
४	६६	४	३४
५	२६	५	५५
६	२५	६	५२

७	७०
८	३०
९	८७
१०	९०
११	१६
१२	३२५
१३	२४
१४	६५
१५	९९
१६	२३८
१७	६९
१८	१९
१९	२८
२०	७६
२१	६१
२२	८७
२३	४७
२४	८६
२५	६२
२६	१०९
२७	२२
२८	७
२९	५१
३०	६९
३१	८०
३२	२९
३३	५३
३४	३१
३५	३३

७	३२
८	१८
९	२०
१०	१७
११	१४७
१२	६५
१३	४९
१४	६२
१५	४२
१६	९६
१७	४४
१८	११९
१९	३२
२०	४७
२१	४७
२२	१०७
२३	८२
२४	२०
२५	२१
२६	७८
२७	३९
२८	३१
२९	४७
३०	२६
३१	१०७
३२	२५
३३	३९
३४	१५२
३५	७६

३६	४८
३७	३९
३८	१६
३९	१८
४०	४८
४१	४५
४२	२७
४३	४६
४४	२९
४५	४१
४६	४०
४८	४७
४८	६२
४९	७२
५०	२६
५१	५०
५२	२६
५३	२५
योग	३२४२

३६	६८
३७	६१
३८	८३
३९	८०
४०	४०
४१	१०७
४२	४२
४३	४२
४४	२४
४५	६१
४६	१४७
योग	२७०२
पूर्वार्द्ध	३२४२
कुल योग	५९४४

ब्रह्म वैवर्त पुराण अ. १३३ शं उ.

> वरं स्कन्द पुराणं च सद्भिरेव निरूपितम् ।
> वामनं दश साहस्रं कौर्मं सप्तदशैव तु ॥१९॥

में कूर्म्मपुराण के १७,००० श्लोकों का होना वर्णन किया गया है इत्यादि प्रमाणों से अनुमान होता है कि वर्तमान पुराण जो आज कल कूर्म्म पुराण के नाम से याद किया जाता है, कूर्म्मपुराण ही नहीं । यदि है तो १७००० श्लोकों वाले कूर्म्मपुराण से न्यूनाधिक करके ५९४४ श्लोकों वाला कूर्म्मपुराण बनाया गया है । जिस से मन्तव्य कोटि में नहीं आता ॥

उत्पत्ति खंड

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम् ।
शान्तवातादिकं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन ॥१॥
एकार्णवेत दा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
तदा समभवद्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२॥
सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा ॥३॥
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥६॥
ततस्तु सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतां महीम् ।
अनुमानात्तदुद्धरं कर्तकामः प्रजापतिः ॥७॥
जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः ।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥८॥
पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम् ।
दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः ॥९॥
दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यास्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम् ।
अस्तुवञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम् ॥१०॥
ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः ।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा धराधरः ॥२३॥

तस्योपरि जलौघस्य महतो नौरिवस्थिता ।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥२४॥
पृथिवीं स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्॥२५॥

पू० अ० ६

भावार्थ

तमोमय एक घोर आर्णव बिना किसी प्रकार के विभागों के था । जिस में किसी प्रकार के वातादि से होने वाले उत्पात न थे । और जिस में किसी प्रकार का विज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता था, उस एकार्णव में, किसी प्रकार के स्थावर तथा जङ्गम पदार्थ न थे । हजारों आंख, हजारों पैर, हजारों शिर वाला अतीन्द्रिय प्रकाशमान ब्रह्मा उत्पन्न हुआ जिस का नारायण नाम था और जो उत्पन्न होकर जल पर शयन करने लगा । जिसने सहस्र युगों पर्य्यन्त रात्रीकाल का सेवन किया और उत्पत्ति के निमित रात्रीसमाप्ति पर ब्रह्मत्व को को प्राप्त किया । तब यह जान कर कि उस जल में पृथिवी डूब हुई है इसलिये उस के उद्धार (निकालने) के लिये प्रजापति ने अनुमान से जल क्रीड़ामें रुचि रखने वाले वराह (सुअर) का अवतार धारण किया और पृथिवी के निकालने के लिये रसातल को चला गया, वहां से अपने दांतों पर चढ़ाकर बाहर निकाला जिस अद्भुत पौरुष (पुरुषार्थ) को देख कर लोकस्थ सिद्ध तथा ब्रह्मर्षि लोगों ने अनेक प्रकार से वराह रूप प्रजापति की स्तुति की, जिस के पश्चात् पृथिवी के निज स्थान पर स्थापित कर के अपने धारित शरीर को त्याग दिया ॥

उस महान् समुद्र के ऊपर नौका के समान तैरती हुई पृथिवी पर पर्वतों के कील लगा दिये ताकि पृथिवी इधर उधर न हिले ।

समीक्षा--

क्या अपूर्व विज्ञान है भला कोई इन भद्र पुरुषों से पूछे कि जिस समय कुछ नहीं था तो उस समय पृथिवी कहां थी, क्या पृथिवी से समुद्र भिन्न वस्तु है यदि ऐसा माना जावे तो जल का आधार क्या वस्तु है ! इन फक्कड़ लोगों को यह भी ज्ञान नहीं कि यदि पृथिवी जलों पर नौका के समान है तो फिर उस के निचले भाग कैसे प्रतीत होंगे और वह फिर दिन रात्री के प्रकरार्थ सूर्य्य के गिर्द कैसे भ्रमण करेगी। ऐसा ज्ञात होता है कि बाइबल के कर्ता ने इसी भाव को लेकर पानी पर तैरने वाली पृथिवी को माना है फिर पर्वतों को पृथिवी पर कीलों के समान मानना कितनी मूर्खता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुरानकार ने भी भूगोल पुराणों से ही सीखा है। स्पष्ट यह है कि पौराणिकों का भूमिज्ञान सर्वथा निकम्मा और विज्ञान शून्य तथा प्रकृति विरुद्ध है।

अग्रेससर्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥१९॥
सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम् ।
क्रतुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः ॥२०॥
पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम् ॥२१॥
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः ।
मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः ॥२२॥
संबोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः ।
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः ॥२३॥

बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः ।
स तप्यमानो भगवान्नं किञ्चित्प्रत्यपश्यत ॥२४॥
ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत ।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ॥२५॥
भ्रुकुटिकुटिलात्तस्य ललाटात्परमेष्ठिनः ।
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः ॥२६॥
स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः ।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम् ॥२७॥
ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः ।
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधा प्रजाः ॥२८॥
निशम्य भगवद्वाक्यं शंकरो धर्म्मवाहनः ।
आत्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः ॥२९॥
तं प्राह भगवान ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः ।
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्वितः ॥३०॥
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृज त्वंमाशुभाः प्रजा ।
निवार्य स तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः ॥३१॥
आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा ॥३२॥
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च ॥३३॥
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
दक्ष मित्र वसिष्टं च धर्म्मं संकल्पमेव च ॥३५॥

प्राणाद्ब्रह्मासृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम् ।
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद्भृगुमेव च ॥३६॥
नेत्राभ्यामत्रि नामानं धर्म्मं च व्यवसायतः ।
संकल्पंचैव संकल्पात्सर्वलोकपितामहः ॥३७॥
पुलस्त्य च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं मुनिम् ।
अपानात्क्रतुमव्यग्रं समाना च्च वसिष्ठकम् ॥३८॥
इत्येते ब्रह्मणा सृष्टाः साधका गृहमेधिनः ।
आस्थाय मानय रूपं धर्म्मस्तैः स प्रवर्तितः ॥३९॥
ततो देवासुरपितृन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुर्भगवानशीशः स्वमात्मानमयोजयत् ॥४०॥

पू० अ० ७

भावार्थ

प्रजापति ब्रह्मा ने सब से पूर्व पांच महायोगी सनक, सनातन सनन्दन, क्रतु और सनत्कुमारों को उत्पन्न किया। जिनको अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। इसलिये उनको लोकों की उत्पति से निरपेक्ष जानकर नारायण महायोगी परमेष्ठी ब्रह्मा ने घोर तप करना आरम्भ किया परन्तु तप करने पर भी मनोकामना पूर्ण न हुई। इस से बहुत काल के व्यतीत हो जाने पर दुःख से क्रोध उत्पन्न हुआ, उस क्रोध पूर्ण नेत्रों से अश्रुविन्दु निकले, जिससे परमेष्ठी के भ्रुकुटी ललाट से महादेव जी पूजनीय नीललोहित उत्पन्न हुए, जिसभगवान् ईश्वर तेजोराशी सनातन को विद्वान् लोग आत्मस्थ देखते हैं उसने ओंकार का ध्यान करके कृताञ्जलि होकर ब्रह्मा जी को प्रणाम

किया जिस पर प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने उसे विविध प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी।

भगवान् शंकर ने ब्रह्माजी की आज्ञानुसार अपने समान मनसे रुद्रों को उत्पन्न किया जिस पर ब्रह्माने उनको आज्ञा दी कि जन्म और मृत्यु वाली प्रजा को उत्पन्न कीजियेगा। परन्तु शिव जी ने मृत्युजन्म सहित प्रजाओं के उत्पन्न करने को स्वीकार न किया। जिससे ब्रह्मा जी ने रुद्र को मना किया। उसके पश्चात् आप अग्नि, अन्तरिक्ष, द्यौ, वायु, पृथिवी, नदियां, समुद्र, पर्वत, वृक्ष और लताओं को उत्पन्न किया, इसी प्रकार मरीची, भृगु, अङ्गिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म, और संकल्प को उत्पन्न किया। उत्पन्न ऋषि महर्षियों को किस किस वस्तु से उत्पन्न किया इसको विस्तार पूर्वक कहते हैं।

ब्रह्मा जी ने प्राणों से दक्ष को, चक्षुओं से मरीची को, शिर से अङ्गिरस को, हृदय से भृगु को, नेत्रों से अत्रि, व्यवसायसे धर्म को और संकल्प से संकल्प को उत्पन्न किया। प्रजा पति ने उदान से पुलस्त्य, व्यानसे पुलहमुनि को, अपानसे व्यप्रको क्रतु समानसे वशिष्ट गृहमेधियों तथा साधकों को उत्पन्न किया और इनका मनुष्य रूप स्थापन करके उनमें कर्म की प्रवृत्ति करदी जिसके पश्चात् देव, असुर, पितरा और चौथे मनुष्यों इन चारों को उत्पन्न करने की इच्छा से भगवान् ने अपने आत्मा को संयत किया॥ इत्यादि

समीक्षा—

इस सृष्टि उत्पत्ति क्रम को पढ़ने से ज्ञात होता है कि पुराण कर्त्ता ने वेद मन्त्रों के गूढ़ उत्पत्ति विषयक भावों को न जान कर अंडबंड अर्थों को अपने भावानुसार लिख दिया है। जब यह सब ऋषिमुनि ही उत्पन्न कर दिये तो उनका विशेष

स्थानों से उत्पन्न करने का क्या प्रयोजन था। क्या चक्षुर्भ्यां और नेत्राभ्यां में कुछ अन्तर है, जिन से भिन्न २ मुनि उत्पन्न किए गए। संस्कृत साहित्याभिमानी विद्वान् अन्य विद्याओं को तिलाञ्जली देकर श्लोक बनाने बैठ जाते हैं, यह नहीं अनुभव कर सकते कि जो कुछ लिख रहे हैं वह सृष्टि में होने वाला भी है और क्या यह कभी संभव भी हो सकता है? जब जल के बीच से पृथिवी को निकाला गया तो उसके पश्चात् आपः, अग्नि, वायु, पर्वत आदि कोई भिन्न वस्तुएं थी जिन को पश्चात् उत्पन्न किया गया। क्या मानव रूप और मनुष्य रूप भी भिन्न २ वस्तुएं हैं जिन को उत्पन्न करनेकी फिर चेष्टा की, जब मरीचि आदि उत्पन्न हो गए तो पितर और देव कोई उन से भिन्न पदार्थ हैं। क्या कहा जावे शब्दजाल के अन्दर फंसे हुए पण्डितम्मन्य जन सत्य विद्याओं को सर्वथा भूल कर मनमानी गाथाएं लिखते और पढ़ते हैं और कुछ विचारते नहीं। ईश्वर इन को सद्बुद्धि प्रदान करे यही वांछा है।

वाराणसि प्रयागादि तीर्थमहात्म्य खण्ड

कूर्मपुराण के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में कई एक अध्याय केवल तीर्थों के महात्म्य वर्णन के अर्पण किए गए हैं। कोई ऐसा पुण्य नहीं जो इन तीर्थों के स्नान अथवा निवास से प्राप्त नहीं हो जाता। इन अध्यायों के पाठ से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण तीर्थों के पण्डों ने मिलकर इन महात्म्यों को वर्णन कर दिया है ताकि अज्ञानी पुरुष स्त्री वहां जा कर अपना धन, मान मर्य्यादा उन के अर्पण कर वहीं पर प्राणों को त्याग दें। गृहस्थ पुरुषों का तो जो कुछ होना है अवश्य होगा ही परन्तु उन पण्डों को तो घर बैठे बिठाए अनेकानेक सम्पत्ति प्राप्त हो जावेगी। इस पुराण के पाठ से यह भी ज्ञात होता है कि सभी यज्ञ, कर्म्म, तप, दान, ब्रह्मचर्य्यादि यम नियम निरर्थक हैं क्योंकि केवल तीर्थ पर दुष्ट से दुष्ट पापात्मा परममोक्षको प्राप्त हो सकता है। यही एक मूल कारण है कि लोग वेदप्रतिपाद्य, कष्टसाध्य व्रतों को त्याग कर सुलभ तीर्थयात्रा की ओर बढ़े चले जाते हैं जिससे देश तथा जाति की दिन प्रतिदिन अधोगति हो रही है।

पुराणकर्ता के शब्दों में—

प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ हिमालयः।
केदारं भद्रकर्णञ्च गया पुष्कर मेव च ॥ १ ॥
कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदा हाटकेश्वरम्।
शालिग्रामञ्च पुष्पाग्रं वंशं कोकामुखं तथा ॥ २ ॥
प्रभासं विशगेशानं गोकर्णं शङ्कुकर्णकम्।
एतानि पुण्य स्थानानि त्रैलोके विश्रुतानि च ॥ ३ ॥

यास्यन्ति परम मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः ।
वाराणस्यां विशेषेण गङ्गात्रिपथगामिनी ॥ ४ ॥
प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम् ।
यदि पापो यदि शठो यदि वा धार्मिको नरः ।
वाराणसीं समासाद्य पुनाति स कुलत्रयम् ॥ ५ ॥
जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा ।
ऐकेन जन्मना मोक्षः कृति वासे तु लभ्यते ॥ ६ ॥
स्वकर्मणाहृतालोका नैव गच्छन्ति तत्पदम् ।
स्वल्पमल्पतरं पापं यस्य चास्ति नराधिप ॥ ७ ॥
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्व मायाति संक्षयम् ।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नाम संकीर्त्तनादपि ॥ ८ ॥
मृत्तिका लम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
षष्टि तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः ।
तेषां सान्निध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन ॥१०॥
या गति योगयुक्तस्य सन्यस्तस्य मनीषिणः ।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे ॥११॥

भाषार्थ

प्रयाग, पुण्यनैमिष, श्रीशैल और हिमालय, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्र, कोटि, नर्मदा, हाटकेश्वर, शालिग्राम, पुष्पाग्र, वंश, कोकामुख, प्रभास, विशगेशान, गोकर्ण, शङ्ककर्ण, इत्यादिअनेक पुण्य स्थान त्रिलोक में प्रसिद्ध हैं परन्तु वाराणसी

(काशी) में मरने से सब नर परम मोक्ष को प्राप्त होते हैं क्योंकि गंगा विशेष करके काशी में त्रिपथगामिनी है । यहां पर सैकड़ों पूर्वजन्मों के किए पाप गंगा में प्रवेशमात्र से नाश हो जाते हैं। चाहे कितना ही पापी, शठ, दुष्ठ, दुराचारी अधर्मात्मा क्यों न हो काशी में प्रवेश करने मात्र से उसके तीन कुल तर जाते हैं।

दूसरे तीर्थों पर हजारों जन्मों में भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता, परन्तु काशी में एकही जन्म वास करने से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई पुरुष चाहे कि अपने उत्तम कर्म द्वारा छोटे से से छोटा पाप भी नष्ट कर सकूं तो यह असंभव है परन्तु वह पाप प्रयाग नाम स्मरण मात्रसे नाश हो जाता है, अथवा दर्शनमात्र वा प्रयाग संकीर्तन से बहुपाप नष्ट हो जाते हैं। यदि कोई पुरुष प्रयाग की मट्टी को अपने शरीर पर मल देवे तो वह नर पापों से छूट जाता है। साठ हजार तीर्थ तथा साठ क्रोड़ अन्य पुण्य स्थान सब यहां पर एकत्रित हुए हैं। हे महाराज युधिष्ठर ! जो गति योगयुक्त परम वैराग्यवान् मुनि तथा सन्यासी को प्राप्त होती है वही गति गंगा यमुना के संगम पर प्राणों के त्यागने से पुरुष प्राप्त कर सकता है।

समीक्षा:—

इससे अधिक कौन सा सहज उपाय हो सकता है, पापों से भी छूटे और धन दौलत मान मर्य्यादा भी पण्डों के अर्पण करे। काशी तथा प्रयागादि तीर्थ चोरों, डाकुओं के लिये निवास स्थान बनाए गए प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार आजकल सरकार ने ऐसे सब दुष्ट पुरुषों को कारागार देने के लिये कालापानी नियत किया है ताकि वहां जाकर दुष्ट भाव को त्याग दें, इसी प्रकार काशी प्रयागादि तीर्थ स्थान आबाद करने की नियत से यह गाथाएं रची

प्रतीत होती हैं। न जाने इन पापी दुराचारी पुरुषों को क्या सूझी जो वेद प्रतिपादित धर्मों के प्रचार को हटा कर इस प्रकार के श्लोक रच दिये जिस से देश तथा जाति पाप सागर में डूब कर घोर दुःख उठा रही है और कोई उपाय उनको सन्मार्ग पर लाने का नहीं सूझता ॥

ब्रह्म का कपाल स्थापन

ब्रह्मा तथा महादेव का युद्ध

ब्रह्मोवाच—

अहन्धाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः।
अनादि मत्परंब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते ॥ १ ॥
अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकोनिवर्त्तकः।
न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन ॥ २ ॥
तस्यैव मन्यमानस्य जज्ञे नारायणंशजः।
प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयं त्रिलोचनः ॥ ३ ॥
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम्।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वे तत्त्वयि विद्यते ॥ ४ ॥
अहं कर्ता हि लोकानां यज्ञे नारायण प्रभो।
न मामृतेऽस्य जगतो जीवनं सर्वथा क्वचित् ॥ ५ ॥
अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम् ॥ ६ ॥

एवं विवदतो मोहात्परस्परजयैषिणोः ।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि ॥ ७ ॥

... ...
... ...

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम् ।
श्रुत्वा विहस्य विश्वात्मा ततश्चाह विमोहितः ॥८॥
कथं मत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्ग विवर्जितम् ।
रमते भार्य्यया सार्द्धं प्रमथैश्चाति गर्वितैः ॥९॥
प्रजज्वालाति कोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः ।
क्षणादपश्यत्स महान् पुरुषो नीललोहितः ॥१०॥
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्करं नीललोहितम् ।
ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटादद्य शङ्करम् ।
प्रादुर्भूतं महेशानं मामतः शरणं व्रज ॥११॥
श्रुत्वा सगर्वं वचनं पद्मयोनेरथेश्वरः ।
स कृत्वा सुमद्युद्धं ब्रह्मण कालभैरवः ॥१२॥
प्रचकर्त्तास्य वदनं विरिञ्चस्य पञ्चमम् ।
विकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना ।
ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वधृक् ॥१३॥

... ...

अथ देवो महादेवो प्रणतार्ति हरोहरः ।
प्रोवाचोत्थाप्य हस्ताभ्यां प्रीतो ऽस्मि तव साम्प्रतम् १४

एष ब्रह्मास्य जगतः संपूज्यः प्रथमः स्थितः ।
आत्मना रक्षणीयस्ते गुणज्येष्ठः पिता तव ॥१५॥
अयम्पुराणः पुरुषो न हन्तव्य स्त्वयानघ ।
स योगैश्वर्य्ये माहात्म्यान्मामेव शरणङ्गतः ॥१६॥
ब्रह्महत्यापनोदार्थं व्रतं लोके प्रदर्शयन् ।
चरस्व सततं भिक्षां संस्थापय सुरद्विजान् ॥१७॥
ततः स भगवानीशः कपर्दी नीललोहितः ।
ग्राहयामास वदनं ब्रह्मणः कालभैरवम् ॥१८॥
चरत्वं पापनाशार्थं व्रतं लोके हितावहम् ।
कपालहस्तो भगवान् भिक्षां गृह्णातु सर्वतः ॥१९॥
यदा द्रक्ष्यसि देवेशं नारायणमनामयम् ।
तदासौ वक्ष्यति स्पष्टमुपायं पाप शोधनम् ॥२०॥
ततः सर्वाणि भूतानि तीर्थान्यायतानि च ।
जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया ॥२१॥
संस्तूयमानः प्रथमैर्महायोगैरितस्ततः ।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः ॥२२॥
तमभ्यधावद्भगवान् हरि नारायणः प्रभुः ।
समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः ॥२३॥
अनुचानुचरो रुद्रं स हरिर्द्धर्म्मवाहनः ।
भजे महादेव पुरीं वारणसीति विश्रुताम् ॥२४॥

प्रविष्टमात्रे विश्वेशो ब्रह्महत्या कपर्दिनी ।
हाहेत्युक्त्वा सन्नादं वै पातालं प्राप दुःखिता ॥२५॥

भावार्थ

एक बार देव सभा में आनन्द में आए हुए ब्रह्मा जी बोल उठे कि मैं ही इस संसार का उत्पन्न करने वाला स्वयम्भु परमेश्वर हूं और मैं ही धाता, विधाता हूं मुझसे पूर्व केवल एक ब्रह्म ही है। मेरी उपासना से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, मैं ही सम्पूर्ण देवताओं का प्रवर्त्तक तथा निवर्त्तक हूं मेरे से अधिक इस लोक में कोई नहीं प्रतीत होता ।

ब्रह्मा जी के इस प्रकार कथन करने पर नारायण के अंश से उत्पन्न महादेव जी बड़े क्रोध में आकर हंसते हुए बोल उठे कि हे ब्रह्मा आप को आज क्या हो गया, ज्ञात होता है कि तुम अज्ञान में पड़ गए हो और तुम्हें सब कुछ भूल गया। क्या तुम्हें पता नहीं कि मैं ही इस सम्पूर्ण जगत् का कर्ता हूं मुझे ही स्वयं नारायण नें इस काम पर नियुक्त किया था, मेरे बिना इस जगत् का जीवन सर्वथा असम्भव है। मैं ही परम ज्योति और मैं ही सबको परागति हूं, मेरे प्रेरणा करने से आपने इस भुवनमण्डल को उत्पन्न किया था। इस प्रकार मोह वश हुए एक दूसरे को जीतने की इच्छा से विवाद करने लगे। सब से पहले चारों वेदों के पास पहुंचे, जिन्हों ने परम ब्रह्म को ही मुख्य वर्णन किया जिस पर विमोहित ब्रह्मा जी ने हंस कर कहा कि सर्वाङ्ग विवर्जित ब्रह्म मुझसे बड़ा हो सकता है जो सदा स्त्री के संग घूमता फिरता है। इस पर ब्रह्मा का पार्श्ववर्ती शिर अत्यन्त क्रोध में आया हुआ जाज्वल्यमान हो गया जिसको महादेव जी ने देख लिया और ब्रह्मा जी बोले कि हे शंकर मैंने ज्ञान के निमित्त आपको अपने ललाट से उत्पन्न किया था इस कारण आप हार मान

कर मेरी शरणमें आ जाइये। ऐसे गर्व भरे वचनों को सुनकर काल-भैरव ब्रह्मा से युद्ध करने लगे और क्रोध में आकर शंकर ने ब्रह्मा जी के पाञ्चवें शिर को काट दिया और उस समय ब्रह्मा तो मर गया परन्तु योगबल से फिर जीवित हो गया और विष्णु की स्तुति करने लगा जिस में अत्यन्त काल व्यतीत हो गया और उधर महादेव भी विष्णु की आराधना में तत्पर हो गया।

बहुत काल के पश्चात् विष्णु जी शंकर पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसको दोनों हाथों से आशीर्वाद देकर बोले कि हम तुम पर अति प्रसन्न हैं, परन्तु यह ब्रह्मा सब से प्रथम पुरुष है और सब जगत् का पूज्य है और सबसे रक्षा करने योग्य है और सम्पूर्ण गुणों से ज्येष्ठ है और तेरा पिता है, यह पुराना पुरुष है, हे पाप रहित इसको मारना नहीं चहिये था। वह ब्रह्मा योगैश्वर्य के बल से मेरी शरण आ गया था इस लिये आप ब्रह्महत्या के पाप से बचने के लिये और इस लोक में इस व्रत को संस्थापन करने के निमित्त देवताओं तथा ब्रह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों को दिखाते हुए लगातार भिक्षा वृति को धारण कीजियेगा। विष्णु की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर महादेव ने कालभैरव ब्रह्मा के शिर को हाथ में पकड़ा, और महादेव को आज्ञा मिली कि तुम लोक में ब्रह्म हत्या रूपी पाप के नाशार्थ हित वर्धक व्रत को कीजिये और कपाल हाथ में लेकर सदैव भिक्षा करो और जब भगवान् देवेश तुम्हें मिलेंगे तो वह तुमको पाप शोधनार्थ स्पष्ट उपाय बता देंगे।

तब महादेव जगत् के हित चाहने के लिये सम्पूर्ण भूतों तथा अनेकानेक तीर्थों का अपनी लीला से सेवन करने लगा, वह महायोगी कपाल हाथ में लिये हुए नृत्यमान और और अन्य योगी महात्माओं से संस्तूयमान इधर उधर अटन करने लगा। एक वार भगवान् हरि

नारायण प्रभु अपना परं रूप धारण करके महादेव के नृत्य को देखने की इच्छा से चले धर्म वाहन रुद्र पीछे २ विश्रुत महादेव को वाराणसी (काशी) नगरी में पहुंचे, विश्वेश के प्रवेश करते ही ब्रह्म हत्या हा, हा, कहतो हुई बड़ी दुःखी हुई पाताल देश में चली गई।

समीक्षाः—देव लीला भी एक विचित्र वस्तु है कि जो स्यात् मूर्ख मण्डल के लिये भले ही हितकर हो परन्तु विचारशील सज्जन पुरुषों को तो अत्यन्त दुःख दायिनी है भला कौन विचारशील इस महादेव को योगीश्वर महायोगी मानने को उद्यत होगा जिनमें योग के प्रथम अङ्ग यम के प्रथम भाग अहिंसा का अंश भी नहीं दीखता जिन पुरुषों में सहिष्णुता का इतना भाव नहीं कि किसी को अपने से बड़ा मान लिया जावे और जो अपनी बड़ाई और पर निन्दा में इतना कटिबद्ध है कि दूसरे का सर्वथा नाश देखनेमें संकोच नहीं करता।

विष्णु की भी अपूर्व लीला है कि कहीं ऋषि पत्नियों के सतित्व के नाशार्थ नग्न महादेव के साथ स्त्री के रूप में लीला कर रहे हैं, और कहीं उसी महादेव को कपाल हाथ में लेकर भिक्षाटन करने की आज्ञा दे रहे हैं। इन पुराण कर्त्ताओं के मस्तिष्क इतने भ्रष्ट थे कि इन्होंने किसी भी बड़ी से बड़ी व्यक्ति को नीचा दिखलाने को यत्किञ्चित भी कसर नहीं छोड़ी। यह आर्य्य जाति के इतने शत्रु हैं कि इन्हों ने आर्य्यों के किसी को भी तत्व रूप से महापुरुष कहलाने के योग्य नहीं छोड़ा कोई न कोई कलंक उस पर लगाही दिया है जिससे जाति अपने पूर्वजों के बल बोते पर कभी भी शिर ऊंचा न कर सके, ऐसे मित्ररूप शत्रु से जगदीश्वर रक्षा करें।

भुवन ज्ञान खण्ड

सर्व पुराणों के समान कूर्मपुराण में भी कई एक अध्याय भुवनज्ञान सम्बन्धि लिखे गए हैं, जिन में भुवन कोश, भुवन विन्यास, सप्त महालोक, सप्ततल, सप्त द्वीप, सप्त सागरादि का वर्णन किया गया है। जिन के पाठ मात्र से साधारण से साधारण पुरुष भी अनुभव करेगा कि पुराणकर्ताओं को यत्किञ्चित् भी एतद्विषयक परिज्ञान न था और न हो किसी विद्वान् ने इस विषय के खोजने का प्रयत्न किया है।

पृथिवी उत्पत्ति विषयक उद्धृत श्लोकों से अच्छी प्रकार ज्ञात हो गया होगा कि जिन की पृथिवी समुद्र पर नौका के समान हो और जिस के जल पर न डगमगाने के लिये पर्वतों की मेखें लगाई गई हों उनके सप्तद्वीप और सप्तसागर किस प्रकार होंगे सहज में ही अनुभव किया जा सकता है यही हाल भुवन कोशों का जान लीजियेगा।

विद्वानों के विचारार्थ कतिपय श्लोक कूर्मपुराण से उद्धृत कर के यह दर्शाने का प्रयत्न किया गया है कि इन पण्डित मन्यमान पुरुषों की इस में ऊहा कितनी निर्बल और क्षुद्र थी।

मूल

अतः परम्प्रवक्ष्यामिभूर्लोकस्य निर्णयम्।
जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च ॥ १ ॥
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः।
एते सप्तमहाद्वीपाः समुद्रैः संसभिट्ताः ॥ २ ॥

द्वीपाद्द्वीपो महानुक्तः सागराच्चापि सागरः ।
क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः ॥ ३ ॥
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः ।
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा समुद्रा धरा स्मृताः ॥ ४ ॥
द्वीपैश्चसप्तभिर्युक्तो योजनानां समन्ततः ।
जम्बूद्वीपः समस्तानां मध्येचैव व्यवस्थितः ॥ ५ ॥
भूमेर्योजन लक्षेतु भानोर्वमण्डलं स्थितम् ।
लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम् ॥ ६ ॥
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते ॥ ७ ॥
नवयोजन साहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारोमण्डलस्य प्रमाणतः ॥ ८ ॥
द्विगुणः सूर्य्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ।
योजनानां सहस्राणि भास्करस्यरथोनव ॥ ९ ॥
तेभ्योऽधस्ताच्च चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ।
सूर्य्यसोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥ १० ॥
जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्वीमहेतुर्महर्षयः ।
महागजप्रमाणानि जंब्वास्तस्याः फलानि च ॥ ११ ॥
चतुर्दशसहस्राणि योजनानाम्महापुरी ।
मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः ॥ १२ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन् द्वीपे प्रकीर्तिताः ।
इज्यते भगवानीशो वर्णैस्तत्र निवासिभिः ॥ १३ ॥

सर्वेधर्मरता नित्यं सर्वे मुदितमानसाः ।
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः ॥ १४ ॥

भाषार्थ

इस पृथिवी का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि इस में सात द्वीप हैं जिन में सब से मुख्य जम्बूद्वीप है। अन्य छे द्वीपों के नाम प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर हैं जिनके गिरदा-गिरद सात समुद्र हैं।

क्षार, इक्षुरस, सुरा, घृत, दधि, क्षीर समुद्र हैं जिन सब का विस्तार मिला कर पांच सौ कोटी योजन है॥

जम्बूद्वीप सब के मध्य में है। और भूमि से लक्षयोजन भानु (सूर्य्य) मण्डल है और लक्ष योजन परे शशि (चन्द्र) मण्डल है। और उससे परे लक्ष योजन नक्षत्र मण्डल है। और नौ हजार योजन परे सूर्य्य से विष्कम्भ है जिसका विस्तार इनसे तीन गुणा है, और सूर्य्य से दुगुणा चांद का विस्तार है। उनसे नीचे ४ च्यार महाग्रह हैं।

इसका नामजम्बूद्वीप महर्षियों ने इस लिये रखा था कि इस द्वीप में हाथी के समान जम्बू फल होते हैं, उसमें मेरु पर्वत पर एक पुरी (नगरी) जिसको देवपुरी कहते हैं जो चौदह सहस्र योजन विस्तार वाली है। इस द्वीप में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य औरशूद्र वास करते हैं,और भगवान् का भजन और जाप करते हैं, सब लोग धर्म परायण हैं और सदैव प्रसन्न मन रहते हुए आनन्द पूर्वक पाञ्चहजार ५००० हजार वर्ष तक जीते हैं।

समीक्षाः-इस कथन से साधारण बुद्धि वाला पुरुष भी अनुमान कर सकता है किइस वर्तमान पृथिवी पर तो कोई ऐसा द्वीप नहीं

जिस में हाथी २ जितने जम्बू फल लगते हों। इस भूलोक में तो सेगडक जितने भी जम्बू फल नहीं होते, न जाने इनके मस्तिष्क में हाथी कितने परिमाण का होगा और जिस वृक्ष पर वैसे हाथी के परिमाण के अनेक फल लगे हों वह कितना बड़ाहोना चाहिये यह पुराण कर्त्ताही जानते होंगे।

भुवन ज्ञान का इनको इतना भी ज्ञान नहीं कि सूर्य्य से दुगुणा चांद को लिख मारा और सूर्य्य से लाख योजन परे लिख दिया इन पण्डितों को क्या? अन्ध परम्परा में पड़ कर ही लोग इनके वचनों पर विश्वास कर सकते हैं।

जो सूर्य्य पृथिवी से क्रोड़ों मील दूरी पर है उसको लाख योजन कह मारा, इनको ख्याल होगा कि इसी प्रकार यह जगत् मूर्ख मण्डल ही रहेगा अत्यन्त शोक का स्थान है। कहां वेद का प्रवचन "शतायुर्वै पुरुषः" सर्वसाधारण मनुष्यों की आयु सौ वर्ष है कहां इनके कथन कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र, ५००० वर्ष तक जीवन व्यतीत करते हैं कोई प्रमिति का अन्त भी हो न जाने यह कहां का वर्णन है। भारतवर्ष की चप्पा २ भूमि को माप कर १८०० मील बताया गया है भारत (आर्यावर्त) से कई गुणा छोटा तिब्बत और उसमें सुमेरुपर्वत और सुमेरु पर्वत पर एक देवपुरी जिस का विस्तार १४००० चौदह सहस्र योजन अर्थात् ६०००० मील के लगभग है जो एशिया की लंबाई से भी अधिक है और यदि उसमें योरुप भी मिला कर दोनों को एक महाद्वीप बनाया जावे तौ भी एक पुरी के आकार में छोटा ही रहे तौ ऐसी पुरी पुराण कर्त्ता के मस्तिष्क में ही समा सकती है। इस भूगोल में तो उसके लिये स्थान नहीं। ऐसी २ महा गप्प घड़ने वाले पुराण कर्त्ता के बने पुस्तक कभी मन्तव्यग्रन्थ माने जा सकते हैं कदापि नहीं।

समीक्षाः—कूर्म पुराण में ४१ अध्याय पूर्वार्द्ध से ५१ अध्याय पर्य्यन्त जम्बू द्वीपादि ७ द्वीपों और सप्त सागरों का वर्णन किया गया है। वर्तमान भूगोल जिस पर अनेक विद्वान् प्रत्येक देश निवासी भ्रमण करके सम्पूर्ण द्वीपों तथा सागरों को देख कर उनका वृतान्त अच्छी प्रकार विस्तार पूर्वक लिख चुके हैं यदि उन २ विद्वानों के लेखों को कूर्म्म पुराण के कर्ता के सप्त द्वीपों तथा सप्त सागरों के वर्णन से मिलाकर देखा जावे तो अच्छी प्रकार निश्चय हो जाता है कि पुराण कर्ता को इस विषय में किञ्चनमात्र भी बोध न था। यदि इस वर्तमान पृथिवी पर विद्यमान द्वीपों की परिस्थिति का मान करना हो तो जम्बूद्वीप एशिया तथा योरुप को मिलाकर ही एक द्वीप माना जा सकेगा, जिससे प्लक्ष द्वीप द्विगुणा वर्णन किया गया है जिसको क्षीर सागर ने घेर रखा है जैसे लिखा है

जम्बूद्वीपस्य विस्तराद्द्विगुणेन समन्ततः।
संवेष्टयित्वा क्षीरोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः॥

इसी प्रकार प्लक्ष द्वीप से द्विगुणा विस्तार वाला शाल्मलि द्वीप है जिसको इक्षु सागर ने घेरा हुआ है

प्लक्षद्वीप प्रमाणान्तु द्विगुणेन समन्ततः।
सं वेष्टयेक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः॥

इत्यादि कथनानुसार इस पृथिवी पर न कोई ऐसा द्वीप है और न कोई ऐसा सागर यह केवल पुराण कर्त्ता के ही मस्तिष्क में होगा। इसी प्रकार इससे द्विगुण विस्तार वाला कुशा द्वीप और उसके गिर्दागिर्द सुरोदाब्धि अर्थात् सुराकासागर है। इस वर्तमान पृथिवी पर कोई ऐसा प्रतीत नहीं होता न किसी ने अद्यपर्य्यन्त दृष्टिगोचर किया है यदि किसी पौराणिक जगत् में हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

अचंभा यह है कि इसी पृथिवी का वर्णन है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारो वर्णों का अनुसंधान है और फिर उनकी आयु पांच २ सहस्र प्रत्येक स्त्री पुरुष की लिखी है।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन् द्वीपे प्रकीर्तितः।
सर्वे धर्मरता नित्यं सर्वे मुदितमानसाः ॥
पञ्च वर्ष सहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः ॥

इस प्रकार की आयु वाले स्त्री पुरुष ब्राह्मणादि वर्णों में इस लोक में तो दिखाई नहीं देते और नहीं वेद और तदनुकूल शास्त्र कारों ने कहीं पर वर्णन किया है। वेदादि सत्य शास्त्र तो "शतायु र्वै पुरुषः" प्रत्येक स्त्री पुरुष की आयु १०० वर्ष वर्णन करते हैं महर्षिदयानन्द जी जो चारों वेदों के विज्ञाता थे अपने ग्रन्थों में वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हुए "त्र्यायुष जमदग्ने" इत्यादि मन्त्रों की प्रतीक देकर कथन करते हैं कि आदित्य ब्रह्मचारी की आयु ४०० वर्ष पर्य्यन्त हो सकती है। जब कृष्ण भगवान् जैसे योगीश्वर धर्मात्मा जितेन्द्रिय पुरुष की आयु १२५ वर्ष पुराणकार मानते हैं और भीष्म पितामहा की आयु २०० वर्ष के लगभग मानी गई है तो यह कौन सा द्वीप है जिसमें प्रत्येक नर नारी की आयु ५००० हजार हो ? सर्वथा असम्भव है।

इसी प्रकार पुष्कर द्वीप का वर्णन करते हुए पुराण कर्ता महाशय लिखते हैं कि:-

क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीपं पुष्करसंज्ञितम्।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः ॥

क्षीर समुद्र का जल बड़ा स्वादु है इस समय लोगों ने सम्पूर्ण समुद्रों को देख लिया है सबका जल खारी ही है और किसी

भी सागर वा महासागर का जल इस योग्य नहीं कि उसको मनुष्य पान कर सकें। इन सब अध्यायों का पाठ करने से यह ज्ञात होता है, कि यह सब द्वीप तथा सागर गोलाकार हैं और प्रत्येक सागर का दूसरे सागर से कोई सम्बन्ध नहीं। इस क्षीर सागर के गिर्दागिर्द द्विगुणी काञ्चन वाली भूमि है और उसके गिर्द एक लोकालोक पर्वत है जो १०००० योजन चौड़ा है जिसका इस समय कहीं पता नहीं चलता।

इस प्रकार जम्बू द्वीप से लेकर लोकालोक पर्वत पर्य्यन्त जिस प्रकार एक गाड़ी का पय्या और उसके गिर्द एक चक्र लोहे का होता है ठीक उसी प्रकार का वर्णन पुराण कर्ता लोकालोक पर्वत का करते हैं, जिसका पृथिवी पर होना असम्भव है क्यों कि यह पृथिवी गोलाकार है चक्रके समान नहीं, अण्डाकार है पय्येके समान नहीं। जो सर्व सागरों से मिले हुए वेष्टित हैं एक सागर से चलकर सर्वसागरों में से हो कर फिर उसी सागर में आ जाता है इस प्रकार का भाव पुराण कर्ता के मस्तिष्क में लेश मात्र भी नहीं और न कोई विद्वान पुराण के शब्दों से उद्घाटन करने का साहस कर सकता है पुराण कर्ता तो जम्बूद्वीप को चक्रकी नाभीके समान मानता है और उसके गिर्द सात समुद्र हैं प्रत्येक दो समुद्रों के बीच वाली गोलाकार भूमि को द्वीप माना गया है. इससे विद्वान सज्जन अच्छी प्रकार जान सकते हैं कि पुराण कर्ता भुवन ज्ञान से कितना अनभिज्ञ था, पता लगता है कि उसको इस भूगोल विद्याका लेशमात्र भी परिज्ञान नहीं था। यह भाव जैनिओं ने इनसे लिया अथवा पुराण कर्ताओं ने जैनिओं से लिया इसकी खोज करना अति कठिन है।

देव लीला

देवदारु वन प्रवेश

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते ।
सपुत्रदारतनयास्तपश्चेरुः सहस्रशः ॥१॥
प्रवृत्तं विविधङ्कर्म्म प्रकुर्व्वाणा यथाविधि ।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षयः ॥२॥
तेषां प्रवृत्तिविन्यतचेतसाथ शूलभृत् ।
व्याख्यापन्सदा दोषं ययौ दारु वने हरः ॥३॥
कृत्वा विश्वगुणं विष्णु पार्श्वे देवो महेश्वरः ।
ययौ निवृत्तविज्ञान स्थापनार्थश्च शङ्करः ॥४॥
आस्थाय विपुलश्चैव जनं विंशतिवत्सरम् ।
लीलासो महाबाहुः पीनांगश्चारुलोचनः ॥५॥
चामीकरवपुः श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
मत्तमातंगगमनो दिग्वासा जगदीश्वरः ॥६॥
जातरूपमयीं मालां सर्व रत्नैरलङ्कृताम् ।
दधानो भगवानीशः समागच्छातिसस्मितः ॥७॥
योऽनन्तः पुरुपो योनिर्लोकानामव्ययो हरिः ।
स्त्री वेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शोभनम् ॥८॥
सम्पूर्णं चन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम् ।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नूपर कद्रमम् ॥९॥

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलञ्चारुलोचनम् ।
उदारहंसगमनं विलाससुमनोहरम् ॥१०॥
एवं स भवानीशो देवदारुवनं हरः ।
चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत् ॥११॥
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम् ।
मायया मोहिता नार्य्यो देवदेवं समन्वयुः ॥१२॥
विस्रस्ताभरणाः सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रताः ।
सदैवं तेन कामार्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि ॥१३॥
ऋषीणां पुत्रका येस्युर्युवानो जितमानसाः ।
अन्वागगन् हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीडिताः ॥१४॥
गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता नारीगणा नायकमेकमीशम् ।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्तमिष्टन्तथा लिङ्गितमाचरन्ति ॥१५॥
तं भर्त्स्य तापसा विप्रा समेता वृषभध्वजम् ।
कोभवानिति देवेशं पृच्छति स्म विमोहिताः ॥१६॥
सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः ।
इदानीं भार्य्ययादेशं भवद्भिरिह सुव्रताः ॥१७॥
तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्य्यां तपश्चर ॥१८॥
अथोवाच विहस्येशः पिनाकी नीललोहितः ।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम् ॥१९॥

कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्य्यापोषणोत्सुकैः ।
त्यक्तव्या ममभार्य्येति धर्म्मज्ञैः शान्तमानसैः ॥२०॥

ऋषय ऊचुः

व्यभिचार रताभार्य्याः सन्त्याज्याः पतिनेरिताः ।
अस्माभिर्भक्ता सुभगा नेदृशस्त्यागमर्हति ॥२१॥

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसान्यमिच्छति ।
नाहमनेमपि तथा विमुञ्चामि कदाचन ॥२२॥

ऋषय ऊचुः

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभिः पुरुषाधम ।
उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि ॥२३॥
एवमुक्ते महादेवः सत्यमेव मयेरितम् ।
भवतां प्रतिज्ञा ह्येषा त्यक्त्वासौ विचचार ह ॥२४॥
सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्यमहात्मनः ।
वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थो परमेश्वरः ॥२५॥

... ...

ताडयाञ्चक्रिरे दण्डैर्लोष्टि भिर्मुष्टिभिर्द्विजाः ॥२६॥
दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतिलक्षणम् ।
प्रोचुरेतद्भवल्लिंगमुत्पाट्य सुदुर्मतेः ॥२७॥
तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शङ्करः ।
युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते ॥२८॥

उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान् भगनेत्रहा ।
नापश्यंस्तत्क्षणादीशं केशवं लिंगमेव च ॥२९॥

भावार्थ

प्राचीनकाल कालका वर्णन करते हुए पुराणकर्ता वर्णन करते हैं कि एक बार रम्यदारु वन में जहाँ पर देवता, सिद्ध तथा ऋषि लोग अपने पुत्र पुत्री स्त्री सहित सहस्रों जन अनेक प्रकार के तपश्चरण में निमग्न थे। और जहां पर नाना प्रकार के यज्ञ यागादि उत्तम कर्म विधि पूर्वक महर्षि लोक करते थे, महादेव उनको इन कामों से हटाने के लिये मनमें निश्चय करके उनके दोषों को वर्णन करते हुए उस दारु वन में पधारे।

विश्वगुरु विष्णु को भी साथ लिया और दोनों का उद्देश्य यह था कि यज्ञ यागादि प्रवृत्ति मार्ग से हटा कर निवृति मार्ग की ओर उनको लगाया जावे। इस महान कार्य करने की परमेच्छा से अपने आपको २० बीस वर्ष का नवयुवक अत्यन्त सुन्दर चन्द्र के समान मुख, मस्त हाथी के समान चलते हुए पूर्ण नग्न अनेकानेक बहुमूल्य रत्नों की माला गलेमें डाले हुए तथा विष्णु को सम्पूर्ण चन्द्र वदना पीनोन्नतपयोधरा सुप्रसन्न हंसती हुई नूपुरादि झंकार सहित सुपीत दिव्य वस्त्रों सहित अत्यन्त सुन्दर नेत्रों वाली हंसकी चाल चलती हुई मनको हरने वाले कामोत्पादक विलास करती हुई स्त्री का शरीर धारण कराकर अपनी बगल में लिए हुए उस वन में अपनी मायासे वन वासियोंके मनको हरण करते हुए विचरण करने लगे।

इस प्रकार महादेव और विष्णु स्त्री पुरुष रूप धारण कर जब उस वन में घूमने लगे तो उस वन की पतिव्रता ललनाएं सर्व प्रकार की लज्जा को परित्याग कर अपने वस्त्रों को उतार कर कामार्ता मायामोहिता विलास करती हुई उनके साथ चलीं। ऋषि पुत्रियां

भी जो युवा और जित मानसा थीं काम से पीड़ित होकर महादेव के पीछे चल पड़ीं, नाचती, गाती, विलास करती सम्पूर्ण नारियां महादेव को अपना पति बनाने की इच्छापूर्वक चेष्टा करने लगीं।

इस प्रकार आचार हीन निन्दनीय व्यवहारको देखकर ब्राह्मण लोग इकट्ठे होकर महादेवको भर्त्सना (झिड़क) कर बोले और विस्मित होकर महादेव से पूछने लगे कि आप कौन हैं जिसके उत्तर में भगवानीश ने कहा कि हे व्रती लोगो ! मैं स्त्री के साथ आपके स्थानमें तप करनेके लिये आया हूं ॥ उसके इस वचनको सुनकर भृगु आदि मुनिवर कहने लगे कि यदि आपकी यही इच्छा है तो वस्त्र धारण कीजिये और स्त्री को त्याग कर तप करिये। ऋषियों के इस वचन को सुनकर हंसते हुए महादेवने जगत्कारण पास ठहरे हुए विष्णु रूप स्त्री की ओर देखकर कहा कि जब आप लोग स्त्रियों का भरण पोषण करते हुए यहां पर तप कर सकते हैं तो मुझे आप लोग धर्म के जानने वाले शान्त मन किस प्रकार स्त्री के त्याग का उपदेश देते हैं।

ऋषियों ने उत्तर दिया कि व्यभिचार में रत स्त्रिएं पतिओं से त्याज्या होती हैं परन्तु हमारी स्त्रिएं तो पतिभक्ता सुव्रता हैं इस कारण त्याज्या नहीं। महादेव जी बोले कि यह मेरी स्त्री मन से भी किसी अन्य पति की इच्छा नहीं करती इस लिये मैं इसको कभी नहीं त्याग सकता।

ऋषि लोगों ने कहा कि हे अधम पुरुष, हम सब इसको व्यभिचार करते देख रहे हैं तू असत्य कहता है इसलिये तू शीघ्र ही यहां से चला जा। इस प्रकार कहने पर महादेव बोले कि मैंने सत्य कहा है आपका यह ख्याल होगा। उनको छोड़कर अन्यत्र घूमने लगे।

इस प्रकार मुनीन्द्र महात्मा विशिष्ठ के आश्रम पर भिक्षार्थ आ विराजे, वहां जाकर वशिष्ठ की स्त्री से जार कर्म किया–जिस पर मुनीश्वरों ने उसको दण्डों, पत्थरों और मुक्कों से खूब पीटा और नग्न फिरते हुए देखकर बोले कि हे दुर्मते ! इस अपने लिंग को फाड़ कर फैंक दो जिस पर महादेव ने कहा ऐसा ही करूंगा। ऐसा कह कर उसने अपने लिंग को परे फैंक दिया, उसी क्षण वह वह महादेव और पार्वती रूप विष्णु तो लुप्त हो गए परन्तु वहां पर लिंग ही लिंग रह गया, जिसने अनेक प्रकार का उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया इत्यादि।

समीक्षा:–इस प्रकार की देव लीला को पढ़कर सुन कर कौन विद्वान् नहीं कह उठेगा कि धन्य हो पुराण कर्ता जी धन्य तुम्हारी बुद्धि और धन्य तुम्हारी महिमा यह कौन सा निवृति मार्ग है जिस के स्थापनार्थ महादेव जी ने यह कौतक रचा था। क्या यह सचमुच वैदिक यज्ञयागादि के प्रचार को मिटाने के लिये और लोक में दुराचार विस्तृत करणार्थ यह गाथा नहीं रची गयी। जब साक्षात् भगवान् ही पर स्त्री गमन करने पर तुल जावे तो दूसरे लोग जितना दुराचार करें थोड़ा होगा। यह सब कथा वैदिकधर्म के शत्रुओं की बनाई हुई है। भोले भाले हिन्दु "बाबा वाक्यं प्रमाणं" कह कर सब सत्य मानते है, सब स्त्री पुरुष वृद्ध बाल और नारी सम्पूर्ण जन श्रद्धापूर्वक सुनते और वाह वाह कह कर हरे हरे पुकारते हैं। उन दुष्ट पापियों दुराचारियों पर न जाने क्यों बिजली नहीं टूट पड़ती जो ऐसी २ दुराचार की बातें कर्म के नाम पर प्रचलित करते हैं और वेद अनुयायी स्त्री पुरुषों को दुराचार की ओर घसीट रहे हैं। हा ! सत्यानाश हो ऐसे शठ पापी जीवों का जो धर्म के नाम पर घोर अत्याचार का उपदेश

करते हैं और अपने महात्मा, सत्यवादी ब्रह्मचारी, सदाचारी पूर्वजों को कलङ्कित करने का साधन बनते हैं।

मृतपितृश्राद्ध और मांस

द्वामासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हरिणेनतु ।
उरभ्रेणाथ चतुरः शकुनेनह पञ्चतु ।
षण्मासां शछागमांसेन पार्षतेनहे सप्त वै ॥ १ ॥
अष्टावेणस्य मांसेन रौरवेण नवैवतु ।
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषै ॥ २ ॥
शशकूर्म्मयो र्मांसेन मासानेकादशै व तु ।
संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु ।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्ति र्द्वादशवार्षिकी ॥ ३ ॥
कालशाकं महाशल्कः खड्गलोहामिष मधु ।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वशः ॥ ४ ॥
न किंचिद्वर्जयेच्छ्राद्धेनियुक्तस्तु द्विजोत्तमः ।
न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीक्षयेत् ॥ ५ ॥
यो नाश्नाति द्विजोमांसं नियुक्तः पितृकर्म्मणि ।
स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेक विंशतिम् ॥ ६ ॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत् ।
यावन्ति पशुरोमाणि तावन्तो नरकान् व्रजेत् ॥ ७ ॥

भावार्थ

मृत पितरों को तृप्त करने के लिये विशेष २ भोजन ब्राह्मणों को खिलाने की आज्ञा दी गई है कि पितृ श्राद्ध कर्म में ब्राह्मणों को यदि मछली का मांस खिलाया जावे तो २ मास पर्य्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और हरिण के मांस से तीन मास पर्य्यन्त, उरभ्र (मेंढे) के मांस से ४ चार मास, शकुन (गीध) के मांस से पांच मास छगा (बकरे) के मांस से ६ छे मास, पार्षत के मांस से ७ मास, एनस के मांस से आठ महीने पर्य्यन्त, रौरव (मृग) से नौ मास तक, वराह और महिष (सुअर तथा भैंस) के मांस से दश मास, शशकूर्म (खरगोश तथा कछुए) के मांस से ११ मास और गौ के मांस से पूर्ण वर्ष पर्य्यन्त पितर तृप्त रहते हैं और वार्ध्रीणस के मांस से १२ वर्ष तक, और कालशाक महाशल्क(गेण्डा) खड्गलोह मांस और मधु को मुनिलोग अनन्तकाल पर्य्यन्त तृप्ति का साधन अन्न मानते हैं—

यदि कोई ब्राह्मण पितृश्राद्ध में निमन्त्रित किया गया हो तो उसके लिये विशेष आज्ञा है कि वह दिये हुए भोजन में किसी वस्तु को भी न त्यागे और मांस का निषेध कर उससे दूसरे किसी अन्न की इच्छा न करे। और जो द्विज पितृकर्म्म में नियुक्त मांस को नहीं खाता वह मर कर २१ जन्म पर्य्यन्त पशुयोनि को प्राप्त होता है और जो ब्रह्मदेव कर्म तथा श्राद्धकर्म से आमन्त्रित मांस को त्याग देता है वह उतने काल पर्य्यन्त नरकों में रहता है जितने उस पशु के रोम होते हैं॥

समीक्षा—

कौन पुरुष है जो थोड़ी बहुत भी बुद्धि रखता हो यह अनुमान न करता होगा कि किस प्रकार ब्राह्मणों को मांस खाने के लिये

उत्तेजित किया गया है और भय दिखाया गया है, कोई भी ऐसा मांस नहीं जिस को खाने की आज्ञा पुराणकार ने न दी हो कितना अनर्थ प्रतिपादन है। कोई भी सदाचारी विद्वान् उस कथन को सत्य मानने के लिये तैयार न होगा। इन पुराण कर्ताओं ने अपने मन माने सिद्धान्तों के प्रचारार्थ ऐसे २ महानिन्दनीय श्लोक बना कर श्रद्धालु मूर्ख मण्डल को अपने वशीभूत करने का प्रयत्न किया है। इसीलिये महर्षि ने पुराण को विष मिश्रित अन्न के समान त्याज्य कह कर सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन किया है जो सर्वथा सत्य प्रतीत होता है।

इत्यादि अनेक लीलाएं पुराण में हैं केवल प्रदर्शनार्थ दो तीन ही दर्शायी गई हैं जो वेदानुयायियों के लिये सर्वथा त्याज्य हैं।

सिद्धान्त खण्ड

१ ईश्वर

आदित्वादादि देवोऽसाव जातत्वादजं स्मृतः ।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापति रिति स्मृतः ॥१॥
देवेषु च महादेवो महादेव इतिस्मृतः ।
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः ॥२॥
वशित्वादपि वश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः ।
ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वं हरोयतः ॥३॥
अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति स स्मृतः ।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥४॥
हरः संसार हरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते ।
भगवान्सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः ॥५॥
सर्वज्ञः सर्व विज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः ।
शिवः स्यान्निर्म्मलो यस्माद्विभुः सर्व गतोयतः ॥६॥
तारणात्सर्व दुःखानां तारकः परिगीय ते॥७॥
आदिमध्यान्त हीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः ।
नमस्ताराय शन्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने ॥८॥
अनन्तमूर्त्तये तुभ्यममूर्ताय नमोनमः ।

नमोऽस्तु ते सुसूक्ष्माय मामातीताय ते नमः ॥९॥

नमः शिवाय शुद्धाय नमस्ते परमेष्ठिने ।

त्वयैतत्सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः ॥१०॥

त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम ।

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्र व्योमं निष्कलम् ॥११॥

सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम् ।

प्रपश्यन्ति परात्मानं ज्ञानदीपेन केवलं ॥१२॥

साक्षदेवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम् ।

नित्यानन्द निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थितिः ॥१३॥

भजन्ते परमानन्दं सर्व्वगं जगदात्मकम् ।

स्वात्मन्यवस्थिताः शान्ताः परेव्यक्ता परस्यतु ॥१४॥

तस्मादानादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम् ।

स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते ॥१५॥

न तत्रसूर्यः प्रतिभातीह चन्द्रोनक्षत्राणां गणो नोतविद्युत् ।

तद् भासितं ह्यखिलम्भाति विश्वमतीवभासममलन्तद्विभाति १६।

विश्वोदितन्निष्कलं निर्विकल्पं शुद्धंबृहत्परमं यद्विभाति ।

अत्रान्तरे ब्रह्मविदोऽथ नित्यं पश्यन्यि तत्व मचलं यत्सईशः १७

नित्यानन्द ममृतं सत्यरूपं शुद्धं वदन्ति पुरुषंसर्ववेदाः ।

प्राणानिति प्रणव नेशेतारंध्यायन्ति वेदैरिति निश्चितार्थाः।१८

न भूमिरापो न मनो न वन्हिःप्राणोऽनिलो गगननोत बुद्धिः ।

न चेतनोऽन्यत् परमाकाश मध्ये विभाति देवः शिव एव केवलः
इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं ज्ञानंचेदं सर्ववेदेषु गीतम्।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे युञ्जीतयोगं प्रयतोह्यजस्रम् २०

भावार्थ

परमात्मा को सब का आदि मूल होने से आदि कहते हैं क्योंकि उससे आदि निमित्त कारण दूसरा नहीं और किसी से उत्पन्न नहीं हुआ इस कारण उसको अज नाम से स्मरण करते हैं। चूंकि सम्पूर्ण प्रजा का (पति; रक्षा करने वाला है इसलिये उस प्रभु को प्रजापति कहते हैं। सम्पूर्ण देवों में महान् है इसलिये उसको महादेव भी कहते हैं, सब से बड़ा होने से उस प्रभु को ब्रह्मा भी कहते हैं। सब से परे होने के कारण उसका नाम परमेश्वर है, सब को वश में करने से उसका नाम वशी है, व्यापक होने से उस को ईश्वर कहते हैं, सब स्थान पर जाने से उसका नाम ऋषि है। सब को हर लेने से उसको हरि कहते हैं, किसी से उत्पन्न न होने तथा सब से पूर्व होने के कारण उसको स्वयम्भु कहते हैं, जिस से सम्पूर्ण नर स्थान की प्राप्ति करते हैं इसलिये उसको नारायण कहते हैं। संसार का हरण करने से उस को हर कहते हैं, सर्व व्यापक होने से उसको विष्णु कहते हैं, सब का विज्ञान होने के कारण उस का नाम भगवान् है और रक्षा करने वाला होने से उसी का नाम ओ३म् है, सब का विज्ञानी होने से उसका नाम सर्वज्ञ है, और सब में व्यापक होने से उसे सर्व भी कहते हैं निर्म्मल होने से उस को शिव भी कहते हैं, सब स्थान पर प्राप्त होने से विभु कहलाता है, सर्व दुःखों से तराने वाला होने से उसको तारक कहते हैं। इसलिये आदि, मध्य और

अन्त जिस का नहीं है जिस की प्राप्ति ज्ञानद्वारा होती है हे प्रभु तुम्हें नमस्कार हो। आप जो अमूर्त्त हो अर्थात् मूर्ति रहित हो तुम्हें नमस्कार हो आप जो सुसूक्ष्म हैं, और माया से रहित हैं, माया प्रकृति जिस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे आपको नमस्कार हो। आप जो शिव हैं शुद्ध हैं परमेष्ठि हैं आप को नमस्ते पहुंचे। आप ने ही यह सर्व जगत् उत्पन्न किया है और आप ही परम गति हो आपही सबके पिता आपही सबकी माता हो हे पुरुषोत्तम अक्षर हो परधाम हो, चिन्मात्र हो, व्योम हो, निष्कल हो, सर्वका आप आधार हो अव्यक्त हो अनन्त हो तमस से परे हो अन्धकार से अतीत हो. ऐसे परमात्मा को केवल ज्ञानरूपी दीपक से ही ज्ञानी देखते हैं। उन साक्षात देव को आत्मा के आत्मा परमेश्वर को देखते हैं उसी को नित्यानन्द, निर्विकल्प सत्यरूप कहते हैं. उसके परमानन्द सर्व नाम, जगत् के आत्मा को, अपने आत्मा में स्थित, शान्त योगीजन अपने से भिन्न देखते हैं।

इस लिये वह अनादि, शिव है, वही ईश्वर महादेव है उसी को जान कर मोक्ष की प्राप्ति होती है। वहां पर सूर्य्य रोशनी नहीं दे सकता न चांद, तारागण तथा नक्षत्र और विद्युत. प्रत्युत उसी के तेज से सम्पूर्ण विश्व भासमान है। वह स्वयं भास से परे है और अमल है सबको प्रकाश करता है; उसी से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है वह निष्कल है निर्विकल्प है शुद्ध है। वही सबसे बड़ा सबसे परे और वही सबको प्रकाश करता है, ब्रह्मवित् योगी जन, उस नित्य, तत्व अचल को ही इस सब से परे देखत हैं वही ईश्वर है। सम्पूर्ण वेद उसको नित्य, आनन्द, अमृत, सत्यरूप, शुद्ध, वर्णन करते हैं। यही निश्चय वेदों से ज्ञात होता है,

भूमि, जल, मन, अग्नि, वायु, आकाश बुद्धि, शरीर इन सब से

परे है और अन्य है परमाकाश के मध्य में प्रकाशमान है वही देव वही शिव केवल हैं, यही परम ज्ञान गूढ़ ज्ञान वेदों में गाया गया है इसको योगी जन एकान्त में योगस्थ हो कर ही जानता है।

२ प्रकृति

अव्यक्तं कारणं यत्त नित्यं सदसदात्मकम् ।
प्रधान प्रकृतिश्चेति यमाहु स्तत्वचिन्तकाः ॥ १ ॥
गन्धवर्णरसहीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ।
अध्रुवम् ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्त्यवस्थितम् ॥ २॥
जगत्योनिर्महाभूतं परमिति सनातनम् ।
विग्रहः सर्व भूतानामात्मनाधिष्ठितं महत् ॥ ३ ॥
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम् ।
असाम्प्रतय विज्ञे यंब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ ४ ॥

भावार्थ

प्रकृति को अव्यक्तकारण भी कहते हैं सदसदात्मक नित्य है इसी को तत्त्व दर्शी लोग प्रधान नाम देते हैं। गन्ध, वर्ण, रस, से रहित, शब्द, और स्पर्शगुण के विना अचल, नाश रहित नित्य, अपने स्वरूप में स्थित प्रकृति के लक्षण कहे गये हैं। जो कि जगत् का उपादान कारण, महाभूत, परम और सनातनन है जो महत् रूप सर्व पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश का आदिकारण और जो अपने स्वरूप में अधिष्ठित है दूसरे किसी से उत्पन्न नहीं होता उसी को प्रकृति कहते हैं। जो अनादि और अनन्त है अत्यन्त सूक्षम है सत्व, रज, तमादि तीनों गुणों वाला है, ज्ञानात्मक बुद्धि से जानने योग्य है और जो ब्रह्म के साथ ही वर्तमान था।

मेरे ख्याल में यही सब गुण महर्षि ने अपने ग्रन्थों में वैदिक सिद्धान्त रूप वर्णन किए हैं।

३ प्रलय

गुण साम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।
प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः॥ १॥
ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता ह्यदःसृष्टि रुदाहृता।
अहर्नविद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः॥ २॥

भावार्थ

तीनों गुणों की जब साम्य अवस्था हो जावे अर्थात् विकृतिभाव का नाश हो जब कि सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में और पुरुष परमात्मा में स्थित हों ऐसी अवस्था को प्रलय जाननाना चहिये। जब तक कि फिर जगत् की उत्पत्ति न हो, उसी को ब्राह्मी रात्री कहते हैं। और जब सृष्टि होती है तो उसको ब्रह्म दिन कहा जाता है प्रलय अवस्था में चूंकि दिन नहीं होता इस कारण उपचार मात्र से रात्री उसको कह देते हैं तत्वतः न दिन होता है और न रात्रि।

४. वेद

गुप्तये सर्व देवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ ।
ऋचोयजूंपि सामानि तथैवाथर्वणानि च ॥ १ ॥
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया ।
अनादि निधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ॥२॥
आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः
अतोन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।३।
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते ।
वेदार्थवित्तमैः कार्य्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ॥४॥
स श्रेयः परमो धर्म्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः ।
या वेदबाह्यास्स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ॥५॥
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ता स्मृताः॥६॥
नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत् ॥७॥
ममैवैषा पराशक्तिर्वेद संज्ञा पुरातनी
ऋग्यजुः साम रूपेण सर्गादौ संप्रवर्त्तते ॥८॥
तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः
ब्राह्मणादीन्ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत ॥८॥
यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु

श्रुति स्मृति विरुद्धा नि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥१०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्
धर्मेण सहितं ज्ञानं परब्रह्म प्रकाशयेत ॥११॥

भाषार्थ

'सम्पूर्ण देवताओं, प्राकृत देवताओं तथा विद्वानों की रक्षार्थ यज्ञ और चारों वेद ऋग, यजु,साम और अथर्व उत्पन्न किए गए।' यह ब्रह्म की नित्या शक्ति सदैव साथ रहने वाली, अनादि निधना, दिव्या है, उस स्वयम्भू से जो वाणी उत्पन्न हुई, वह वाणी वेदमयी थी जिससे सम्पूर्ण प्रवृत्ति हुई औरजिस से सर्व संसार में ज्ञान हुआ। उसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्र जो इस पृथिवी पर प्रचलित हैं बने। धीर विद्वान उन में अपना चित नहीं लगाते क्योंकि उन के पठन पाठन से पाखण्डी बन जाते हैं। वेद के पश्चात् वेदार्थ जानने वाले मुनियों ने स्मृति का निर्माण किया उसी को परम धर्म जानो। जो वेद के प्रतिकूल स्मृतियां हैं और जो अन्य वेद विरुद्ध कुग्रन्थ हैं वह सब निष्फल हैं उन के पठन पाठन से तमोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है और किसी ग्रन्थ के पढ़ने से धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। धर्म का ज्ञान तौ केवल वेद से ही होता है इस कारण मुमुक्षु पुरुष धर्मार्थी केवल परमात्मा के निज रूप वेद का ही आश्रय ले॥ यह मेरी ही पराशक्ति है जिस को वेद कहते हैं जो सृष्टि के आदि में ऋग, यजु, सामादि के रूप में प्रवृत्ति होती है उन्हीं वेदों की रक्षार्थ अज भगवान ने ब्राह्मणादि चारों वर्णों को उत्पन्न कर के अपने २ कर्म में नियुक्त किया॥ इस लोक में जितने अनेक प्रकार के शास्त्र दीखते हैं और जो श्रुति और स्मृति के विरुद्ध हैं वे निश्चय पूर्वक तामसी हैं इस लिये सर्व प्रयत्न से धर्मार्थ

वेद का आश्रय करना चाहिये और धर्म पूर्वक ज्ञानके द्वारा ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्थात् धर्म विरुद्ध ज्ञान भी ब्रह्म प्राप्ति का साधन कदापि नहीं होता इसी कारण लोक प्रसिद्ध है कि शुष्क ज्ञान केवल वाग् विडम्बना मात्र है।

आश्रम

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ता कारणादन्यथा भवेत् ॥१॥
उत्पन्नज्ञानविज्ञानी वैराग्यं परमं गतः।
प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥
दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः।
यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तो यदिसन्यसेत् ॥३॥
अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजान्।
न गार्हस्थं गृहीत्यक्त्वा संन्यसेद् बुधिम. ... ॥४॥
अथवैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे।
तत्रैव संन्यसेद्विद्वान निष्ट्वापि द्विजोत्तमः ॥५॥
अथापि विविधैर्मज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयन्।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद्विरक्तः संन्यसेद् बहिः ॥६॥
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेन्पुनः।
व सन्यासी वनश्चाथ ब्रह्मचर्यश्च साधकः ७ ॥

भावार्थ

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति (सन्यास) यह क्रम

पूर्वक चार ही आश्रम हैं परन्तु कारण वश इन में विकल्प भी हो जाता है। जैसे यदि किसी पुरुष विशेष को ज्ञान विज्ञान और परम वैराग्य उत्पन्न हो जावे तो परम गति को प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचर्य्य से सन्यास को धारण कर लेवे इसमें कोई क्षति नहीं॥ नहीं तो विधिपूर्वक विवाह करता हुआ अनेक यज्ञों को सम्पादन करे और पुत्रों को उत्पन्न करे। यदि गृहस्थाश्रममें उसको परम वैराग्य हो जावे तो विना वानप्रस्थाश्रम के ही सन्यास धारण कर सकता है, परन्तु गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् बुद्धिमान् द्विज विना आत्मसमान पुत्रोत्पादन करने के और विना अनेक प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान करने के सन्यास को कभी धारण न करे। यदि परम वैराग्य के उत्पन्न हो जाने के कारण गृहाश्रम में न ठहर सके तो द्विजोत्तम विद्वान् यज्ञयाग के विना भी संन्यास को धारण कर सकता है परन्तु साधारण नियम यही है, कि गृहाश्रम में अनेक यज्ञों को पूर्णतया सम्पादन करते हुए वन को जावे और वहां अनेक प्रकार के तपों को तपते हुए योग साधन रूपी तप द्वारा विरक्त चित सन्यासाआश्रम में प्रवेश करे। परन्तु ध्यान रहे कि वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करके कदापि पुनः गृहस्थ में प्रविष्ट न हो और न ही सन्यासी पुन: वानप्रस्थ, अथवा ब्रह्मचर्य्याश्रम में लौटे, यही एक नियम वर्तमान आचार्य्य ने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है इसी को धारण करने से कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं॥

वर्ण धर्म

अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्यथाविधि ।
दर्शे चैवहि तस्यान्ते नवसस्ये तथैव च ॥ १ ॥
एषधर्मः परो नित्यमपधर्मोन्य उच्यते ।
त्रयाणामिहि वर्णानांगृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ २ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते ।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम् ॥ ४ ॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनः शुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानमाचरेत् ॥ ५ ॥
प्राङ्मुखेः सततं विप्रःसन्ध्योपसनमाचरेत् ।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥
अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वेऽपरांगतिम् ॥ ७ ॥
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्म्मं कार्य्ये द्विजोत्तमः ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स यातिनरकायुतम् ॥ ८ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवत्तेन देवो योगतनुः परः ॥ ९ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।
कायक्लेशश्च यन्मूलं ध्यायेत्मनसेश्वरम् ॥ १० ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वामास्ते सन्ध्यान्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्व कर्म विवर्जितः ॥ ११ ॥
आत्मार्थे भोजनं यस्य रत्यर्थे यस्य मैथुनम् ।
वृत्त्यर्थे यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ॥ १२ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हिविशेषतः ।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा भजेत् परमेश्वरम् ॥ १३ ॥

भावार्थ

गृहस्थाश्र में रहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लिये मुख्य धर्म यह है कि सायं और प्रातः यथा विधि अग्निहोत्र किया करें और दर्श पूर्णमास यज्ञ किया करें इनके अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु परिवर्तन पर यज्ञ किया करें। यह सबके लिये नित्य और परम धर्म है शेष सब गौण और अनित्य हैं, इस लिये सब वर्ण और ब्राह्मण शुद्ध चित होकर अग्निहोत्र करके परमात्मा का मनन करें अग्निहोत्र से बढ़कर द्विजों के लिये कोई धर्म नहीं है इस लिये अग्निहोत्र द्वारा परमात्मा का आराधन करें।

आत्मा को एक तीर्थ माना गया है जो ब्रह्मवेदी महात्माओं से सेवन करने योग्य है जिसमें मन की शुद्धि करने वाले पुरुषों को नित्य स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण को सदैव प्राङ् मुख सन्ध्योपासन करना चाहिये सन्ध्या से हीन पुरुष अपवित्र किसी कार्य्य के योग्य नहीं होता ब्राह्मण वेद का जानने वाला शान्त चित्त एकान्त एकाग्र मन वाला प्रातः और सायं विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करे,जो द्विजो-

त्तम सन्ध्या को परित्याग कर दूसरे धर्म कार्य्यों में यत्न करता है वह नर्कगामी होता है, इस लिये सर्व प्रयत्न से सन्ध्या को नित्य किया करें। परमात्मा की उपासना ही उत्तम योग है। प्रातः काल (ब्राह्ममुहूर्त में) उठ कर धर्म और अर्थ का चिन्तन करे और काम क्लेश के जो कारण हों उनका विचार करे तथा ध्यान करे। जो पुरुष प्रातः तथा तथा सन्ध्या समय परमात्मा के ध्यान में निमग्न नहीं होता वह शूद्र के समान लोक में सर्व कर्मों से विवर्जित हो जाता है।

जिस द्विज का भोजन केवल अपने ही लिये हो और रति के लिये स्त्रीसम्भोग करे और केवल जीवन निर्वाह के लिए जो विद्या को पढ़ता है उसका जीवन निष्फल है इस लिये सर्व प्रयत्न से सब द्विजों को और विशेष करके ब्राह्मण को अग्निहोत्र करके विशुद्धात्मा हो परमेश्वर का भजन करना चाहिये।

काल संख्या

काष्ठा पंच दश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः।
काष्ठा त्रिंशत्कला त्रिंशत कला मोहूर्तिकोगतिः ॥१॥
तावत्संस्थैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ २ ॥
तैः षडभिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रत्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ॥ ३ ॥
दिव्यैवर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत ॥ ४ ॥

अन्त जिस का नहीं है जिस की प्राप्ति ज्ञानद्वारा होती है हे प्रभु तुम्हें नमस्कार हो। आप जो अमूर्त्त हो अर्थात् मूर्त्ति रहित हो तुम्हें नमस्कार हो आप जो सुसूक्ष्म हैं, और माया से रहित हैं, माया प्रकृति जिस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती ऐसे आपको नमस्कार हो। आप जो शिव हैं शुद्ध हैं परमेष्ठि हैं आप को नमस्ते पहुंचे। आप ने ही यह सर्व जगत् उत्पन्न किया है और आप हो परम गति हो आपही सबके पिता आपही सबकी माता हो हे पुरुषोत्तम अक्षर हो परधाम हो, चिन्मात्र हो, व्योम हो, निष्कल हो, सबका आप आधार हो अव्यक्त हो अनन्त हो तमस से परे हो अन्धकार से अतीत हो. ऐसे परमात्मा को केवल ज्ञानरूपी दीपक से ही ज्ञानी देखते हैं। उन साक्षात देव को आत्मा के आत्मा परमेश्वर को देखते हैं उसी को नित्यानन्द, निर्विकल्प सत्यरूप कहते हैं. उसके परमानन्द सर्व नाम, जगत् के आत्मा को, अपने आत्मा में स्थित, शान्त योगीजन अपने से भिन्न देखते हैं।

इस लिये वह अनादि, शिव है, वही ईश्वर महादेव है उसी को जान कर मोक्ष की प्राप्ति होती है। वहां पर सूर्य्य रोशनी नहीं दे सकता न चांद, तारागण तथा नक्षत्र और विद्युत, प्रत्युत उसी के तेज से सम्पूर्ण विश्व भासमान है। वह स्वयं भास से परे है और अमल है सबको प्रकाश करता है, उसी से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है वह निष्कल है निर्विकल्प है शुद्ध है। वही सबसे बड़ा सबसे परे और वही सबको प्रकाश करता है, ब्रह्मवित् योगी जन, उस नित्य, तत्व अचल को ही इस सब से परे देखत हैं वही ईश्वर है। सम्पूर्ण वेद उसको नित्य, आनन्द, अमृत, सत्यरूप, शुद्ध, वर्णन करते हैं। यही निश्चय वेदों से ज्ञात होता है,

भूमि, जल, मन, अग्नि, वायु, आकाश बुद्धि, शरीर इन सब से

परे है और अन्य है परमाकाश के मध्य में प्रकाशमान है वही देव वही शिव केवल हैं, यही परम ज्ञान गूढ़ ज्ञान वेदों में गाया गया है इसको योगी जन एकान्त में योगस्थ हो कर ही जानता है।

२ प्रकृति

अव्यक्तं कारणं यत्त नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधान प्रकृतिश्चेति यमाहु स्तत्वचिन्तकाः ॥ १ ॥
गन्धवर्णरसहीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अध्रुवम् ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्त्यवस्थितम् ॥२॥
जगत्योनिर्महाभूतं परमिति सनातनम्।
विग्रहः सर्व भूतानामात्मनाधिष्टितं महत् ॥ ३ ॥
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
असाम्प्रतय विज्ञे यंब्रह्माग्रे समवर्तत ॥ ४ ॥

भावार्थ

प्रकृति को अव्यक्तकारण भी कहते हैं सदसदात्मक नित्य है इसी को तत्त्व दर्शी लोग प्रधान नाम देते हैं। गन्ध, वर्ण, रस, से रहित, शब्द, और स्पर्शगुण के विना अचल, नाश रहित नित्य, अपने स्वरूप में स्थित प्रकृति के लक्षण कहे गये हैं। जो कि जगत् का उपादान कारण, महाभूत, परम और सनातनन है जो महत् रूप सर्व पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश का आदिकारण और जो अपने स्वरूप में अधिष्ठित है दूसरे किसी से उत्पन्न नहीं होता उसी को प्रकृति कहते हैं। जो अनादि और अनन्त है अत्यन्त सूक्षम है सत्व, रज, तमादि तीनों गुणों वाला है, ज्ञानात्मक बुद्धि से जानने योग्य है और जो ब्रह्म के साथ ही वर्तमान था।

मेरे ख्याल में यही सब गुण महर्षि ने अपने ग्रन्थों में वैदिक सिद्धान्त रूप वर्णन किए हैं।

३ प्रलय

गुण साम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।
प्राकृतः प्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भवः ॥ १ ॥
ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता अदःसृष्टि रुदाहृता।
अहर्नविद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारतः ॥ २ ॥

भावार्थ

तीनों गुणों की जब साम्य अवस्था हो जावे अर्थात् विकृतिभाव का नाश हो जब कि सर्व पदार्थ अपने स्वरूप में और पुरुष परमात्मा में स्थित हों ऐसी अवस्था को प्रलय जाननाना चहिये। जब तक कि फिर जगत् की उत्पत्ति न हो, उसी को ब्राह्मी रात्री कहते हैं। और जब सृष्टि होती है तो उसको ब्रह्म दिन कहा जाता है प्रलय अवस्था में चूंकि दिन नहीं होता इस कारण उपचार मात्र से रात्री उसको कह देते हैं तत्वतः न दिन होता है और न रात्रि।

४. वेद

गुप्तये सर्व देवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्वभौ ।

ऋचोयर्जूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च ॥ १ ॥

ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया ।

अनादि निधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ॥२॥

आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः

अतोन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।३॥

न तेषु रमते धीरः पाषण्डी तेन जायते ।

वेदार्थवित्तमैः कार्य्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा ॥४॥

स श्रेयः परमो धर्म्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः ।

या वेदवाह्यास्स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ॥५॥

सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ता स्मृताः॥६॥

नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धर्मो हि निर्वभौ

तस्मान्मुमुक्षुर्धर्म्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत् ॥७॥

ममैवैषा पराशक्तिर्वेद संज्ञा पुरातनी

ऋग्यजुः साम रूपेण सर्गादौ संप्रवर्त्तते ॥८॥

तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानजः

ब्राह्मणादीन्ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत ॥८॥

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु

श्रुति स्मृति विरुद्धा नि निष्ठा तेषां हि तामसी ॥१०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्
धर्मेण सहितं ज्ञानं परब्रह्म प्रकाशयेत ॥११॥

भाषार्थ

सम्पूर्ण देवताओं, प्राकृत देवताओं तथा विद्वानों की रक्षार्थ यज्ञ और चारों वेद ऋग, यजु, साम और अथर्व उत्पन्न किए गए। यह ब्रह्म की नित्या शक्ति सदैव साथ रहने वाली, अनादि निधना, दिव्या है, उस स्वयम्भू से जो वाणी उत्पन्न हुई, वह वाणी वेदमयी थी जिससे सम्पूर्ण प्रवृत्ति हुई औरजिस से सर्व संसार में ज्ञान हुआ। उसके पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्र जो इस पृथिवी पर प्रचलित हैं बने। धीर विद्वान उन में अपना चित नहीं लगाते क्योंकि उन के पठन पाठन से पाखण्डी बन जाते हैं। वेद के पश्चात् वेदार्थ जानने वाले मुनियों ने स्मृति का निर्माण किया उसी को परम धर्म जानो। जो वेद के प्रतिकूल स्मृतियां हैं और जो अन्य वेद विरुद्ध कुग्रन्थ हैं वह सब निष्फल हैं उन के पठन पाठन से तमोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है और किसी ग्रन्थ के पढ़ने से धर्म की उत्पत्ति नहीं होती। धर्म का ज्ञान तौ केवल वेद से ही होता है इस कारण मुमुक्षु पुरुष धर्मार्थी केवल परमात्मा के निज रूप वेद का ही आश्रय ले॥ यह मेरी ही पराशक्ति है जिस को वेद कहते हैं जो सृष्टि के आदि में ऋग, यजु, सामादि के रूप में प्रवृत्ति होती है उन्हीं वेदों की रक्षार्थ अज भगवान ने ब्राह्मणादि चारों वर्णों को उत्पन्न कर के अपने २ कर्म में नियुक्त किया॥ इस लोक में जितने अनेक प्रकार के शास्त्र दीखते हैं और जो श्रुति और स्मृति के विरुद्ध हैं वे निश्चय पूर्वक तामसी हैं इस लिये सर्व प्रयत्न से धर्मार्थ

वेद का आश्रय करना चाहिये और धर्म पूर्वक ज्ञानके द्वारा ही ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होती है। अर्थात् धर्म विरुद्ध ज्ञान भी ब्रह्म प्राप्ति का साधन कदापि नहीं होता इसी कारण लोक प्रसिद्ध है कि शुष्क ज्ञान केवल वाग् विडम्बना मात्र है।

आश्रम

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
क्रमेणैवाश्रमाः प्रोक्ता कारणादन्यथा भवेत् ॥१॥
उत्पन्नज्ञानविज्ञानी वैराग्यं परमं गतः।
प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम् ॥२॥
दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखैः।
यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तो यदिसन्यसेत् ॥३॥
अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजान्।
न गार्हस्थं गृहीत्यक्त्वा संन्यसेद् बुधिमा. ..: ॥४॥
अथवैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे।
तत्रैव संन्यसेद्विद्वान निष्ट्वापि द्विजोत्तमः ॥५॥
अथापि विविधैर्मज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयन्।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद्विरक्तः संन्यसेद् बहिः ॥६॥
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेन्पुनः।
व सन्यासी वनश्चाथ ब्रह्मचर्यश्च साधकः ७ ॥

भावार्थ

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा यति (सन्यास) यह क्रम

पूर्वक चार ही आश्रम हैं परन्तु कारण वश इन में विकल्प भी हो जाता है। जैसे यदि किसी पुरुष विशेष को ज्ञान विज्ञान और परम वैराग्य उत्पन्न हो जावे तो परम गति को प्राप्त करने की इच्छा से ब्रह्मचर्य्य से सन्यास को धारण कर लेवे इसमें कोई क्षति नहीं॥ नहीं तो विधिपूर्वक विवाह करता हुआ अनेक यज्ञों को सम्पादन करे और पुत्रों को उत्पन्न करे। यदि गृहस्थाश्रममें उसको परम वैराग्य हो जावे तो विना वानप्रस्थाश्रम के ही सन्यास धारण कर सकता है, परन्तु गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के पश्चात् बुद्धिमान् द्विज विना आत्मसमान पुत्रोत्पादन करने के और विना अनेक प्रकार के यज्ञों के अनुष्ठान करने के सन्यास को कभी धारण न करे। यदि परम वैराग्य के उत्पन्न हो जाने के कारण गृहाश्रम में न ठहर सके तो द्विजोत्तम विद्वान् यज्ञयाग के विना भी संन्यास को धारण कर सकता है परन्तु साधारण नियम यही है, कि गृहाश्रम में अनेक यज्ञों को पूर्णतया सम्पादन करते हुए वन को जावे और वहां अनेक प्रकार के तपों को तपते हुए योग साधन रूपी तप द्वारा विरक्त चित सन्यासाआश्रम में प्रवेश करे। परन्तु ध्यान रहे कि वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करके कदापि पुनः गृहस्थ में प्रविष्ट न हो और न ही सन्यासी पुनः वानप्रस्थ, अथवा ब्रह्मचर्य्याश्रम में लौटे, यही एक नियम वर्तमान आचार्य्य ने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन किया है इसी को धारण करने से कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं॥

वर्ण धर्म

अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्यथाविधि ।
दर्शे चैवहि तस्यान्ते नवसस्ये तथैव च ॥ १ ॥
एषधर्मः परो नित्यमपधर्मोन्य उच्यते ।
त्रयाणामिहि वर्णानांगृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥ २ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते ।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम् ॥ ४ ॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ।
मनः शुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानमाचरेत् ॥ ५ ॥
प्राङ्मुखेः सततं विप्रःसन्ध्योपसनमाचरेत् ।
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥ ६ ॥
अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वेऽपरांगतिम् ॥ ७ ॥
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्म्मं कार्य्ये द्विजोत्तमः ।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स यातिनरकायुतम् ॥ ८ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् ।
उपासितो भवत्तेन देवो योगतनुः परः ॥ ९ ॥

ब्राह्मे मुहूर्त्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ।
कायक्लेशञ्च यन्मूलं ध्यायेत्मनसेश्वरम् ॥ १० ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वामास्ते सन्ध्यान्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रेण समो लोके सर्व कर्म विवर्जितः ॥ ११ ॥
आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम् ।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम् ॥ १२ ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः ।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा भजेत् परमेश्वरम् ॥ १३ ॥

भावार्थ

गृहस्थाश्रम में रहने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों के लिये मुख्य धर्म यह है कि सायं और प्रातः यथा विधि अग्निहोत्र किया करें और दर्श पूर्णमास यज्ञ किया करें इनके अतिरिक्त प्रत्येक ऋतु परिवर्तन पर यज्ञ किया करें। यह सबके लिये नित्य और परम धर्म है शेष सब गौण और अनित्य हैं, इस लिये सब वर्ण और ब्राह्मण शुद्ध चित होकर अग्निहोत्र करके परमात्मा का मनन करें अग्निहोत्र से बढ़कर द्विजों के लिये कोई धर्म नहीं है इस लिये अग्निहोत्र द्वारा परमात्मा का आराधन करें ।

आत्मा को एक तीर्थ माना गया है जो ब्रह्मवेदी महात्माओं से सेवन करने योग्य है जिसमें मन की शुद्धि करने वाले पुरुषों को नित्य स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण को सदैव प्राङ् मुख सन्ध्योपासन करना चाहिये सन्ध्या से हीन पुरुष अपवित्र किसी कार्य्य के योग्य नहीं होता ब्राह्मण वेद का जानने वाला शान्त चित्त एकान्त एकाग्र मन वाला प्रातः और सायं विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करे, जो द्विजो-

तम सन्ध्या को परित्याग कर दूसरे धर्म कार्य्यों में यत्न करता है वह नर्कगामी होता है, इस लिये सर्व प्रयत्न से सन्ध्या को नित्य किया करें। परमात्मा की उपासना ही उत्तम योग है। प्रातः काल (ब्राह्ममुहूर्त में) उठ कर धर्म और अर्थ का चिन्तन करे और काम क्लेश के जो कारण हों उनका विचार करे तथा ध्यान करे। जो पुरुष प्रातः तथा तथा सन्ध्या समय परमात्मा के ध्यान में निमग्न नहीं होता वह शूद्र के समान लोक में सर्व कर्मों से विवर्जित हो जाता है।

जिस द्विज का भोजन केवल अपने ही लिये हो और रति के लिये स्त्रीसम्भोग करे और केवल जीवन निर्वाह के लिए जो विद्या को पढ़ता है उसका जीवन निष्फल है इस लिये सर्व प्रयत्न से सब द्विजों को और विशेष करके ब्राह्मण को अग्निहोत्र करके विशुद्धात्मा हो परमेश्वर का भजन करना चाहियें।

काल संख्या

काष्ठा पंच दश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः।
काष्ठा त्रिंशत्कला त्रिंशत कला मोहूर्तिकोगतिः ॥१॥
तावत्संस्थैरहोरात्रं मुहूर्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ २ ॥
तैः षडभिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रत्रिर्देवानामुत्तरं दिनम् ॥ ३ ॥
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत ॥ ४ ॥

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम् ।
तस्यतावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्यतु ॥५॥
त्रिशति द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात् ।
अंशकं षट्शतं तस्मात्कृत सन्ध्यांशकै विना ॥ ६ ॥
त्रिद्व्येकधा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेनतु ।
त्रेता द्वापर तिष्याणं कालज्ञाने प्रकीर्त्तितम् ॥ ७ ॥
एतद्द्वादशसहहस्रं साधिकं परिकल्पितम् ।
तदेक सप्तति गुण मनोस्तरमुच्यते ॥ ८ ॥
ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवश्च चतुर्दशः ।
स्वायम्भुवादयः सेर्वे ततः सावर्णिकादयः ॥ ९ ॥

भावार्थ

१५	निमेष	का	एक	काष्ठ,
३०	काष्ठ	,,	,,	कला
३०	कला	,,	,,	मुहूर्त्त
३०	मुहूर्त	,,	,,	मानुष दिन रात्री
३०	दिन रात्रि	,,	,,	मास (दोनों पक्ष)
६	मास	,,	,,	अयन।
२	अयन	,,	,,	एक वर्ष (दक्षिणाय,उत्तरायण

दक्षिणायन को देवताओं की रात्रि कहते हैं और उतरायण को देवताओं का दिन ऐसे देवताओं के सहस्र वर्षों की कृत त्रेतादि युग संज्ञा होती है। ऐसे १२ चत्रुयुगों के दो भाग जानने चाहिये।

ऐसे ४ हजार वर्षों को कृतयुग जानो और उतने शत सन्ध्या और सन्ध्यांश कृतयुग की होती है।

कृत युग को छोड़ कर तीन शत दो शत और एक शत क्रम से सन्ध्या और छे शत ही सन्ध्यांश होते हैं। तीन सहस्र दो सहस्र और एक सहस्र देव वर्षों का सन्ध्या और सन्ध्यांश के विना त्रेता द्वापर और कलियुग होता है। ऐसा काल सन्ध्यापरिज्ञान वेता विद्वान् कथन करते हैं। इस प्रकार १२ हजार सब मिला कर परिकल्पना की गई है।

कृतयुग	४०००	सन्ध्या	४००	सन्ध्यांश	४००
त्रेता	३०००	"	३००	"	३००
द्वापर	२०००	"	२००	"	२००
कलि	१०००	"	१००	"	१००
योग	१००००		१०००		१०००
				सर्वयोग	१२०००

ऐसे ७१ चतुर्युगी का एक मनु होता है कुल १४ मनु का ब्रह्म का दिन रात होता है। स्वायम्भु और सावर्णिकादि मनु कहलाते हैं।

इस प्रकार निमेष से लेकर ब्रह्मदिन पर्य्यन्त काल संख्या का परिज्ञान करना चाहिये। इसी प्रकार महर्षि ने वेदभाष्यभूमिकामें वर्णन किया है।

विविध खंड

रावण वंश (१)

मरीचेः कश्यपः पुत्रः स्वयमेव प्रजापतिः ।
कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः ॥ १ ॥
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ
वत्सर श्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ २ ॥
वत्सरान्नैध्रुवोजज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः
रैभ्यस्य जज्ञिरे शूद्राः पुत्राः श्रुतिमतां वराः ॥ ३ ।
च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः
सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै । कुण्डपायिनः ॥ ४ ॥
असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत
नाम्नो वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः ॥ ५
शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्वार्थविच्छुचिः ।
प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुत्तमम वाप्तवान ॥ ६ ॥
शाण्डिल्यो नैध्रुवोरैभ्यः त्रयः पुत्रास्तु काश्यपाः
चरप्रकृत्ययो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः ॥ ७ ॥
तृणविन्दोः सुता विप्रा नाम्ना ऐलविला स्मृता
पुलस्त्याय तु राजर्षिस्ताङ्कन्यां प्रत्यपादयत् ॥ ८ ॥
ऋषिस्त्वैलविलस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत ।

तस्य पत्न्यश्चतस्त्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धकाः ॥ ९॥

पुष्पोत्कटा च वाका च कैकसी देव वर्णिनी ।

रूपलावण्यसम्पन्नास्तासाञ्च शृणत प्रजाः ॥१०॥

ज्येष्ठं वैश्रवणन्तस्य सुषुवे देववर्णिनी

कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥

म्भकर्णं शूर्पणखान्तथैव च विभीषणम्

पुष्पोत्कटाप्यजनयत्पुत्रान्विश्रवसः शुभान् ॥१२॥

भावार्थ

मारीचि का पुत्र कश्यप स्वयं प्रजापति कहलाया, जिस ने पुत्र की कामना करते हुए महत्तप किया, उस के इस प्रकार तप करने पर कश्यप के दो पुत्र वत्सर और असित नाम वाले उत्पन्न हुए और वत्सर के नैध्रुव और रैभ्य दो पुत्र हुए और रैभ्य के शूद्र पुत्र वेदपाठियों में श्रेष्ठ कई एक हुए ।

महात्मा नैध्रुव का विवाह च्यवन की पुत्री सुमेधा से हुआ जिस से कई एक याज्ञिक पुत्रोत्पन्न हुए ।

असित जो कश्यप का दूसरा पुत्र था उसका एकपर्णा से विवाह करने पर देवल नाम वाला ब्रह्मिष्ट योगाचार्य्य महातपस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ । दूसरा विचार यह है कि शाण्डिल्य और नैध्रव और रैभ्य तीन पुत्र वत्सर के थे जो काश्यप कहलाए, इन में से शाण्डिल्य ने पार्वतीश (महादेव) से उत्तम योग की प्राप्ति की और जो बड़ा श्रीमान तत्वार्थ के जाने वाला बड़ा धर्मात्मा था ।

अब हम आप के लिये पुलस्त्य के वंश का वर्णन करते हैं, राजर्षि तृणबिन्दु की एक कन्या ऐलबिला नाम वाली थी जो

राजर्षि ने पुलस्त्य को विवाह दी, जिस से विश्रवस नाम वाला ऋषि उत्पन्न हुआ उसकी ४ स्त्रियां थीं जिस से पुलस्त्य का वंश उन्नत हुआ जिन के नाम पुष्पा, उत्कन्ठा, नाका और कैकसी थे; यह चारों रूप और यौवनादि गुणों में पूर्ण थीं। सब से बड़ा पुत्र कैकसी से राक्षसाधिप रावण नाम वाला उत्पन्न हुआ जो वैश्रवण नाम से भी प्रसिद्ध हुआ, रावण के अतिरिक्त कुम्भकर्ण और विभीषण दो पुत्र और एक कन्या शूर्पणखा नाम वाली उत्पन्न हुई ॥ इसी प्रकार पुष्पा और उत्कटादि स्त्रियों से भी विश्रवस के कई एक पुत्र उत्पन्न हुए ॥

इस प्रकार रावण का वंश ऋषि वंश है केवल कर्मों द्वारा यह वंश राक्षस वंश बन गया ऐसा प्रतीत होता है ॥

(२) व्यास वंश

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम् ।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्वज्ञस्तपसां वरः ॥ १ ॥
आराध्य देवदेवेशमीशानन्त्रिपुरान्तकम् ।
लेभेत्वप्रतिमं पुत्रं कृष्ण द्वैपायनं प्रभुम् ॥ २ ॥
द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शङ्करः ।
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम् ॥ ३ ॥
शुकस्यास्याभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः ।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पंचमः ॥४॥
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता ।
एतेऽत्रिवंशाः कथिता ब्रह्म वादिनाम् ॥ ५ ॥

भावार्थ

वसिष्ठ जी ने अरुन्धती से एक शक्ति नाम वाला पुत्र उत्पन्न किया और शक्ति का पुत्र पराशर श्रीमान सर्वज्ञ और तपस्विओं का शिरोमणि उत्पन्न हुआ। पराशर जी ने महादेव की आराधना से एक अपूर्व कृष्णद्वैपायन पुत्र उत्पन्न किया, और द्वैपायन का पुत्र शुक उत्पन्न हुआ जो भगवान शंकर के समान था और शुक के पांच पुत्र अत्यन्त तपस्वी उत्पन्न हुए जिन के नाम इस प्रकार थे (१) भूरिश्रवा, (२) प्रभु, (३) शम्भु, (४) कृष्ण, (५) गौर और एक कन्या कीर्तिमती थी जो योगमाता और धृतव्रता थी वाले ये अत्रिवंश ब्रह्म पक्षों के कहे हैं॥

(५) कृष्णद्वैपायनव्यास शिष्यवंश

तत्र देवादिदेवस्य चत्वारः सुतयोधनाः।
शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येक मुनिपुङ्गवाः॥ १॥
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमास्थिताः।
क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान्॥ २॥
दुःन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा।
विशोकश्च विकेशश्च विशाखः शापनाशनः॥ ३॥
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः।
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः॥ ४॥
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मनो महौजसः।
सुधामा विरजाश्चैव शंखवारायज एव च॥ ५॥
शारस्वतस्थां मोघो धनवाहः सुवाहनः।

कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पचशिखो मुनिः ॥ ६ ॥
चल वन्धुनिर्रामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनाः ।
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा ॥ ७ ॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च विक्रोशो लम्बकः शुकः ।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च ॥ ८ ॥
सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठो वरिजास्तथा ।
अत्रिरुग्रस्तथा चैव श्रवणोऽथ सुवैद्यकः ॥ ९ ॥
कुणिश्च कुणि वाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ वृहस्पतिः ॥ १० ॥
उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलिः ।
वाजश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः सुपथीश्वरः ॥११॥
हरिरयनाभः कौशिल्योऽक्राक्षु कुथुमिस्तथा ।
सुमन्त वर्च्चसो विद्वान् कवन्धों कुषिकन्धरः ॥१२॥
प्लक्षोदर्वायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा ।
भल्लार्वी मधुपिगश्च श्वेतकेतुस्तपोधनः ॥ १३ ॥
उषिधा वृहद्रक्षश्च देवलः कविरेव च ।
शाल होत्राग्नि वेश्यस्तु युवनाश्व शरद्वसुः ॥ १४ ॥
छगलः कण्डकर्णश्च न्तश्चैव प्रवाहकः ।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्रको ह्याश्वलायनः ॥ १५ ॥
अक्षपादः कुमारश्च ह्युलूको वसुवाहनः ।
कुणिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुरुरेव च ॥ १६ ॥

शिष्या एते महात्मानः सर्वावर्त्तेषु योगिनाम् ।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोग परायणाः ॥ १७ ॥

भावार्थ

व्यास जी के चार सुतपोधन शिष्य हुए जिनके नाम सुमन्त, जैमिनि, वैशम्पायन, और पैल हैं और इनके शिष्य प्रशिष्य अनेक हुए हैं जो प्रसन्न मन वाले, दान्त और परमात्मा के पूर्णभक्त थे जिनके नाम क्रम से वर्णन किए जाते हैं।

१ दुन्दुभि, २ शतरूप, ३ ऋचीक ४ केतुमान, ५ विशोक, ६ विकेश, ७ विशाख, ८ शापनाशन, ९ सुमुख, १० दुर्मुख, ११ दुर्दम, १२ दुरतिक्रम, १३ सनक, १४ सनातन, १५ सनन्दन, १६ महायोगी, धर्मात्मा, महोजस दालभ जिसको वाष्कल भी लिखाहै १७ सुधामा, १८ विराज, १९ शङ्ख वारायज, २० सारस्वत, २१ मोघ, २२ धनवाद, २३ सुवाहन, २४ कपिल, २५ आसुरि, २६ वोढु, २७ पञ्च शिख, २७ पराशर, २८ गर्ग, २९ भार्गव, ३० अङ्गिरा ३१ चल बन्धु, ३२ निरामित्र, ३३ केतुश्रृङ्ग, ३४ तपोधन ३५ लम्बोदर, ३६ लम्ब, ३७ विक्रोश, ३८ लम्बक, ३९ शुक, ४० सर्वज्ञ, ४१ समबुद्धि, ४२ साध्यासाध्य, ४३ सुधामा, ४४ काश्यप, ४५ वसिष्ठ, ४६ वरिजा, ४७ अत्रि, ४८ उग्र, ४९ श्रवण ५० सुवैधक, ५१ कुणि, ५२ कुणिबाहु, ५३ कुशरीर, ५४ कुनेत्रक, ५५ कश्यप, ५६ उशना, ५७ च्यवन, ५८ वृहस्पति, ५९ उथासय, जिसको उतत्थ, भी कहते हैं, ६० वामदेव, ६१ महाकाल, ६२ महानिल, ६४ वाजश्रवा, ६५ सुकेश, ६६ श्यावाश्व, ६७ सुपथीश्वर, ६८ हरिरयाभ, ६९ कौशिल्य, ७० काक्षु, ७१ कुथुमिध, ७२ वर्चस्वीविद्वान सुमन्त ७३ कबन्ध, ७४ कुषिकन्धर, ७५ प्लक्ष, ७६ दर्वायणि, जिसको

दरणायणि भी कहते हैं, ७७ केतुमान, ७८ गौतम, ७९ भल्लाची, ८० मधुविंग, ८१ तपोधन श्वेतकेतु, ८२ उषिधा, ८३ बृहद्रक्षा, ८४ देवल, ८५ कवि, ८५ शाल होत्रा, ८६ अग्निवेश, ८७ युवनाश्व ८८ शरद्वसु, ८९ छगल, ९० कण्डकर्ण, ९१ कुन्त, ९२ प्रवाहक, ९३ उलूक, ९४ विद्युत, ९५ शाद्रक, ९६ अश्वलायन, ९७ अक्षपाद, ९८ कुमार, ९९ उलूक, १०० वसुवाहन, १०१ कुणिक, १०२ गर्ग, १०३ मित्र, १०४ रुरु, यह सब शिष्य कहलाते हैं जो कि सब महात्मा, योगी, विमल,ब्रह्मनिष्ठ, और ज्ञान योग में निपुण थे।

इन नामों का पाठ करने से ज्ञात होता है कि शिष्यों में बहुतों के नाम ऐसे हैं जो व्यास जी से हजारो वर्ष पूर्व हो चुके हैं। जैसे कि गर्ग, रुरु, उलूक, अक्षपात्, कुन्त, युवनाश्व, श्वेतकेतु, गौतम सुमन्त, कौशिल्य, वामदेव, कश्यप, उशना, च्यवन, बृहस्पति, अत्रि काश्यप, वशिष्ट, शुक, पञ्चशिखर, पराशर, भार्गव, अङ्गिरा, दाल-भ्य, सनक, इत्यादि इनका यदि तत्व दृष्टि से विश्लेषण किया जावे तो श्रीमान् पं० भगवद्दत्त जी जैसे अन्वेषण शील विद्वानों को भी भ्रम हो जाता है जिसके कारण वह वैदिक कोष की भूमिका में अनेक विचारशील पुरुषों को भ्रान्त करने का कारण बन गये हैं। अर्थात् वे भी ब्राह्मण ग्रन्थों के संकलन काल को महाभारत कालीन ही मानने के लिये उद्यत हो जाते हैं यह केवल इसी प्रकार के नामों को ही आश्रय करके इस प्रकार के अनुमान करने के कारण होता है। क्या यह प्रसिद्ध नहीं कि व्यास जी के पिता का नाम पराशर था और फिर व्यास जी की शिष्य परम्परा में भी पराशर का नाम आता है अत्रि जो व्यास जी के अत्यन्त पूर्वजों में माने जाते हैं और व्यास वंश को ही अत्रि वंश मानते हैं और यहां पर एक अत्रि नाम वाला व्यास जी के शिष्य का भी दूसरा शिष्य होना निश्चय

करते हैं इस लिये नाम मात्र से इतिहास की तथा जन्म की तिथिएं निकालना अत्यन्त धृष्टता ही नहीं प्रत्युत अज्ञानता भी है। और ऐसे २ कार्य पूर्वी विद्वानों को कदापि अभीष्ट नहीं। पश्चमी विद्वान् भलेही ऐसा करें।

(४) सीताग्नि दाह निरूपण

सृष्ट्वा मायामयीं सीताम् स रावणवधेच्छया।
सीतामादाय रामेष्टां पावको ऽन्तरधीयत ॥
तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तर संस्थिताम् ॥२॥
कृत्वा तु रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः।
समादाया भवत्सीतां शङ्काकुलितमानसः ॥३॥
सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः।
विवेश पावकं क्षिप्रम् ददाह ज्वलनोऽपि ताम् ॥ ४ ॥
दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुष्णदीधितिः।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः ॥ ५ ॥
प्रगृह्य भर्तुःश्चरणौ कराभ्यां स सुमध्यमा।
चकार प्रणतिम्भूमौ रामाय जनकात्मजा ॥ ६ ॥
दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः।
प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः ॥ ७ ॥
तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथावृत्तं दाशरथिं भूताना मेव सन्निधौ ॥ ८ ॥
इयं सा परमा साध्वी पार्व्वतीव प्रिया तव ॥

भावार्थ

रावण के वध की इच्छा करते हुए पावक मायामयी सीता को पञ्चवटी की पर्णकुटीया में रख कर रामेष्टासीता को वहां से लेकर अन्तर्धान हो गया उस मायामयी सीता को वैसे ही सीता जानकर राक्षसाधिपति रावण वहां से सागर मध्यवर्ती लङ्का में लेगया। राम लक्ष्मण सहित वहां जाकर रावण को मार कर सीता को ले आया। परन्तु उस समय राम के मन में अत्यन्त शङ्का उत्पन्न हो गयी, जिस से वह मायामयी सीता सर्वोपस्थित प्राणियोंको निश्चय कराने के लिये शीघ्रता पूर्वक अग्नि में प्रवेश कर गयी और जल गयी।

भगवान् उष्णाधिपति ने मायामयी सीता को जलाकर राम के लिये असली सीता को वहां उपस्थित कर दिया जिस से पावक सम्पूर्ण देवताओं का अत्यन्त प्यारा बन गया। (क्यों कि उस ने इस प्रकार रावण का वध कराया।) जिस पर जनक की आत्मजा (पुत्री) ने अपने पतिके दोनों चरणों को दोनों हाथोंसे पकड़ कर पृथिवि पर प्रणाम किया "राम ने इस कौतुक को विस्मयाकुल नेत्रों से देख कर वन्हि को शिर से प्रणाम कर के राघव ने पावक को सन्तुष्ट किया" जिस पर लोकों के दाह करने वाले हव्यवाहन ने सब भूतों के समक्ष दशरथ पुत्र राम को सर्व वृतान्त कह सुनाया। और कहा हे राम! सब प्रकार की शङ्का को दूर कीजिएगा क्योंकि यह परम साध्वी तेरी प्यारी है जैसे कि महादेव की पार्वती थी।

इस वृतान्त से यद्यपि सीता के अग्नि दाह पर सम्पूर्ण शङ्काए दूर हो सकती हैं कि जो सीता अग्निमें दाह की गयी थी वह सीता मायामयी थी और वही चुरायी गयी थी, परन्तु यह गाथा भी रामायण की गाथा से कुछ न्यून पौराणिक भाव लिये हुए नहीं। जिस से निश्चय होता है कि पूर्वाचार्य्यों की भी अग्निदाह की

शङ्का अवश्य उपस्थित हुई थी जिस को उन्हीं ने अपने अनुभव अनुसार निवारण कर दिया था – आज कल भी एक बङ्गाली की चनी छोटी सी पुस्तक "सीता दाह" इसी भावके निवारणार्थ बनायी गयी है इस में और ख्याल से समझाने का यत्न किया गया है।

सामान्योपदेश

ज्ञान कर्मगुणोपेता ये भजन्ति बहुश्रुताः।
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्तिकुर्य्यादिति श्रुतिः॥१॥
सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम्।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः॥ २ ॥
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः
विद्या कर्म तपो बन्धुर्वित्तं भवति पंचमम्॥ ३ ॥
मान्यस्थानानि पंचातुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्।
एतानि त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च ॥ ४ ॥
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः
पन्थादेयो ब्राह्मणायस्त्रियै राज्ञेह्यचक्षुषे ॥ ५ ॥
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च ॥ ६ ॥
ब्रह्मचारी हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्
गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुष ॥ ७ ॥
यः स्वधर्म्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च ॥ ८ ॥
ऋणानित्रीण्यपाकृत्य कुर्य्याद्वातीर्थसेवनम्।

विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्य्यां तेषु विधाय च ॥ ९ ॥
सहाग्नि वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः ।
सर्वपाप विनिर्मुक्तो यथोक्तं गतिमाप्नुयात ॥ १० ॥

भावार्थ

बहुश्रुत पुरुप वही कहलाते हैं जो ज्ञान और कर्म दोनों प्रकार के गुणों से संयुक्त होते हुए परमात्मा का भजन करते हैं और वेद की यही आज्ञा है कि ब्राह्मण सदैव सब वर्णों की स्वस्ति (कल्याण) चाहने वाला हो, अर्थात् न केवल ज्ञान से, न केवल कर्म से पुरुष बहु गुणी होता है, यदि पुरुषों में यह दोनों गुण हों और साथ ईश्वर भजन भी हो तभी मनुष्य बहुश्रुत कहलाने के योग्य हो सकता है अन्यथा नहीं—और ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह सर्व वर्णों का सदैव कल्याण चाहे यही वेद की आज्ञा है ॥ इस का यह भी लोग अर्थ करते हैं कि यदि अन्य वर्ण ब्राह्मण को अभिवादन करें तो ब्राह्मग उनको उत्तर में स्वस्ति शब्द पुकारा करे और अपने अपने वर्णों में अपने वर्णों वाले के साथ इच्छा पूर्वक अभिवादन किया करें, क्योंकि द्विजातिओं का गुरु अग्नि होता है और अन्य वर्णो का गुरू ब्राह्मण होता है, स्त्री का गुरु अपना पति होता है और सम्पूर्ण मनुष्यों का गुरु सन्यासी होता है ॥

विद्या, उत्तम कर्म, तप बन्धु और धन यह पाञ्च वस्तुएं मान्य के स्थान हैं परन्तु इन में भी पहला पहला उत्तर उत्तर से बड़ा होता है अर्थात् सब से मान्य योग्य विद्वान्. दूसरा उत्तम कर्म करने वाला तीसरा तपस्वी, चौथा बन्धु और पाञ्चवां धनी पात्र क्रम पूर्वक मान्य के योग्य होते हैं और यही लोग तीनो वर्णों में अधिक बलवान् होते हैं। जहां २ यह वस्तुएं उपस्थित हो वह २

मान के पात्र हो जाते हैं परन्तु शूद्र भी मान्य के योग्य होता है यदि वृद्ध हो क्योंकि शूद्र वही है जिस में यह गुण न हों इस कारण वृद्ध अवस्था उसके लिये मान्य का कारण बनती है ॥

रास्ता रुकने पर भी इन व्यक्तिओं को मार्ग की कभी रुकावट नहीं होनी चाहिये ॥ ब्राह्मण को, स्त्री को, राजा को चक्षु हीन को, वृद्ध को, जो भार उठाए जा रहा हो, रोगी को और दुर्बलको॥

ब्रह्मचारी को गृहस्थिओं के घरों से प्रति दिन अन्न भिक्षा से प्राप्त करना चाहिये परन्तु इतना अवश्य ध्यान रखे कि गुरू के कुल से अपनी कुळ से और अपने सम्बन्धिओं से भिक्षा न मांगे ॥

जो पुरुष स्त्री अपने अपने धर्मों का परित्याग कर के तीर्थ सेवा में लग जाते हैं उन की तीर्थों से इस लोक और पर लोक में कोई फल प्राप्त नहीं होता। यदि तीर्थ सेवा करनी हो तो पहले तीन प्रकार के ऋणों अर्थात् देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण को चुका कर तीर्थों का सेवन करे। अपनी सम्पूर्ण सम्पति पुत्रों को सौंप कर औरअपनी स्त्री को भी पुत्रों के पास रखकर देशाटन करे, अथवा अग्नि को साथ लेते हुए और सपत्नीक यत्न पूर्वक तीर्थ यात्रा करे जिस से सर्व पापों से मुक्त हो कर यथोक्त पद को प्राप्त करे॥

इस से स्पष्ट है कि ब्रह्मचर्याश्रम में सम्पूर्ण देवताओं तथा ऋषिओं द्वारा प्राप्त वेदादि सत्यशास्त्र के पठन पाठन तथा शरीर इन्द्रियों के पुष्ट करने से बलवान जितेन्द्रिय ज्ञानी होकर गृहस्थाश्रम में विवाह कर के उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर, पितृ ऋण को सम्पूर्ण कर तीर्थ यात्रा करे, चाहे स्त्री और अग्निहोत्रादि अपनी सम्पत्ति कों पुत्रों के सपुर्द करे चाहे साथ लेकर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करे जिसको दूसरे शब्दों में तीर्थसेवन कहा गया है जहां पर उत्तम विद्वान् सदाचारी तपस्वी लोग निवास करते हैं

उन की सेवादि से सद्गति को प्राप्त करे यही सदुपदेश है, और कर्तव्य कर्म हैं ॥

कर्म महिमा

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्र तत्राश्रमे रतः ।
कर्म्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्य्यान्नैष्कर्मार्प्नुयात ॥ १ ॥
तस्मात्सेवते सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः ।
तृप्तये परमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम् ॥ २ ॥

भावार्थ

इस लिये पूर्व प्रयत्न से जिस किसी आश्रम में मनुष्य हो परमात्मा की आज्ञा को पूर्ण करने के लिये अर्थात् जिस से प्रभु प्रसन्न हों ऐसे कर्मों को करता रहे जिस से नैष्कर्म की प्राप्ति हो अर्थात् सम्पूर्ण कर्म्मों को फल की आकांक्षा न करते हुए केवल प्रभु की तुष्टि के लिये करता जावे अर्थात् कर्म्म करना अपना कर्तव्य मान कर जिस किसी आश्रम में हो बराबर कर्म्म करता रहे इस लिये प्रसन्नधी पुरुष स्त्री सब सदैव कर्म योग को करते रहें केवल प्रभू परमात्मा को तृप्त्यर्थ कर्म्मों को करे ताकि वह शाश्वत् पद को प्राप्त कर सकें ।

यही वैदिक उपदेश है और गीता का उद्देश्य है इसी की प्राप्ति सब सज्जनों को करनी उचित है ।

कृष्ण मरण समय

गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयम् विष्णुसञ्ज्ञितम् ।
कृतानि सर्व कार्याणि प्रसीदध्वम् मुनीश्वराः॥१॥

इदं कलियुगं घोरम् सम्प्राप्तमधुनाऽशुभम् ।
भविष्यन्ति जनाः सर्वेऽह्यस्मिन्पापानुवर्त्तिनः ॥२॥

भावार्थ

कृष्ण जी ऋषिओं के प्रति कहते हैं कि मैं अब विष्णु नामक अपने परम स्थान को चला जाऊंगा अब मैंने सर्व काम जो करने थे कर लिए हैं हे मुनीश्वर लोगो अब आप मुझ पर प्रसन्न हुजियेगा अब यह कलियुगघोर और अशुभ आ पहुंचा है । अब सभी पुरुष स्त्रियां इस में पाप में प्रवृत हो जावेगी । यहां पर यह दर्शाया गया है कृष्ण जी का मरण समय ठीक वही है जब कलियुग का आरम्भ हो गया था और जिस में लोग पाप में रत होगए थे । इस को आज ५०२८ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं सर्व ज्योतिषिओं का मत ईसवी सन् से ३१०० वर्ष पूर्व कलियुग का आरम्भ हुआ था ।

नमस्ते शब्द का प्रयोग

नमः काल रुद्राय संहार कर्त्रे नमो नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते१
नमः धर्म विज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते॥२॥
नमोयोगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं शिवायैक रूपाय भूयो नमस्ते३॥
नमो धात्रे विधात्रे च नमो देवात्ममूर्त्तये ।
सांख्य योगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये ॥ ४ ॥
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे ॥ ५ ॥
नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे ॥ ६ ॥

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने ॥ ७ ॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ ८ ॥

भावार्थ

इन श्लोकों में अनेक वार नमस्ते शब्द का प्रयोग आता है जिस में परमात्मा के प्रति नमस्ते शब्द पुकारा गया और अनेक रूप से कृष्ण, गोविन्द, सूर्य्य, आदि के लिए अनेक वार नमस्ते शब्द का प्रयोग किया गया है, अन्य मतवादी इस शब्द की निन्दा करते और "मस्तके किमपि नास्ति" इत्यादि अर्थ करते हैं उनको अपने ग्रन्थों, का पठन पाठन करने से इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये, यह नमस्ते ऐसा पवित्र पद है कि जिसका प्रयोग सम्पूर्ण पुराणों, महाभारत और अन्यान्य ग्रन्थों में अनेक वार आया है इस लिये इस नमस्ते शब्द को कभी त्याग नहीं करना चाहिये प्रत्युत इस का प्रचार करना ही कर्तव्य है ॥

॥ इति शम् ॥

ओ३म्

परिशिष्ट

यह पुराण असली नहीं।

शिवपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण तथा पद्मपुराण के मत से कूर्मपुराण पन्द्रहवां है। इन पुराणों में जहां भी कूर्म्मपुराण की श्लोक संख्या का उल्लेख है, १७००० श्लोकों या १८००० श्लोकों का उल्लेख है, किन्तु उपलभ्यमान कूर्म्मपुराण में ६००० श्लोक भी नहीं हैं। इससे यही परिणाम निकलता है कि यह पुराण आजकल असली अवस्था में नहीं है।

यह केवल हमारा ही मत नहीं, अपितु प्रसिद्ध पौराणिक श्रीमत्पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र जी की भी सम्मति ऐसी है, वे अपने 'अष्टादशपुराण दर्पण' में लिखते हैं—

'नारद और मात्स्य में कूर्म का जो लक्षण निर्दिष्ट हुआ है, प्रचलित कूर्म्मपुराण में उसका आधा है, और मूल श्लोक भी कम हैं। प्रचलित कूर्म्मपुराण में केवल ६००० मात्र पाये जाते हैं।"
पृ० ३७९।

... ...

"पूर्वोक्त लक्षण के अनुसार कूर्म्मपुराण में आदि पुराण की बहुत सी सामग्री है, तौभी इस में तन्त्र की अनेक बातें हैं और मूल विषय छूट जाने से क्षुद्राकार धारण किया है, इसमें सन्देह नहीं।" पृ० ३८०

जो लोग पुराणों को अपना धर्म्मग्रन्थ मानते हैं, उन के लिए यह एक गम्भीर प्रश्न है। जब उनका धर्मग्रन्थ पूर्ण नहीं, अथवा असली नहीं, तो वे अपने धर्म्मकृत्यों को कैसे शुद्ध विधि से कर पाते होंगे। धर्म के नेता पण्डितजनों का यह कर्त्तव्य है, कि वे इस ओर ध्यान दें। क्यों नहीं पुराणों को छोड़ कर सनातन वेद—केवल वेद को, जिस में एकमात्रा का भी अन्तर नहीं आया, अपनाते॥

पुराणों के अधिकारी

वैदिक मन्तव्य के विपरीत पौराणिक महानुभावों का सिद्धांत है, कि यतः वेद द्विजातिमात्र के लिए हैं, शूद्र को वेदाध्ययनादि का अधिकार नहीं, अतः उसके कल्याण के लिए पुराणों का निर्माण किया गया है। किन्तु कूर्म्मपुराण इस मत का प्रबल खण्डन करता है। जैसा कि—

इदं पुराणं परमं कौर्म्मं कूर्म्मस्वरूपिणा॥१३०
उक्तं देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः॥१३१

कू. पु. पूर्वा. १ अ.

कूर्म्मरूप धारी देवदेव (विष्णु जी) के कहे इस श्रेष्ठ कूर्म्मपुराण पर द्विजातियों को श्रद्धा करनी चाहिए।'

इस श्लोक में आए (द्विजातिभिः) पद पर विचार करें, यदि यह पुराण शूद्रों के लिए होता, तो 'द्विजाभिः' के स्थान में शूद्रवाचक कोई पद होना चाहिए था।

इतना ही नहीं, शूद्रको सुनानेको विपद किया है, सुनाने वाले के लिए नरक का विधान किया है।

नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च संनिधौ ॥ १३३
योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून्॥१३४
कूर्म्मपु. उ० ४६ अ

शूद्र के समीप इस शास्त्र को नहीं पढ़ना चाहिए । जो अज्ञानी इसे शूद्र के समीप पढ़ता है, वह बहुत नरकों को जाता है ।

कहिए महाराज ! द्विजों के लिए तो वेद हैही, शूद्रों का वेदाध्ययन तो अधिकार छीनो ही था, पुराणश्रवणाधिकार भी उनका गया । फिर शूद्रों का कल्याण कैसे होगा ? और इन पुराणों की आवश्यकता ही क्या है ?

पुराण निर्माणकाल

इस विषय में आलोचनाकारने पर्य्याप्त लिख दिया है । यहां केवल एक भ्रमका वारण करनेका यत्न किया जाता है श्रीपं. ज्वाला-प्रसाद प्रभृति सज्जनों का विचार है, कि पुराण वेद के समकलीन हैं, इस के लिए उन्हों ने अथर्ववेद से एक प्रमाण भी खोज निकाला है । जैसा कि वे अ-पु-द-पृ-२-३ पर लिखते हैं—

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥अ.वे.११।७।२४
तथा स बृहतीं दिशमनु०यचलत् । तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानु०यचलन् ॥ ११ ॥ इतिहासस्य च वै पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद । अथर्ववेद काण्ड १५ अनु:१.प्र ६मं १२

इसका अर्थ यह है कि यज्ञके उच्छिष्टद्वारा ईश्वर से यजुर्वेद सहित ऋक् साम छन्द और पुराण प्रकट हुए हैं ॥ ११।७।२४ ॥

वह बड़ी दिशा को गया इतिहास पुराण गाथा नाराशंसी उस के पीछे गई वह निश्चय इतिहास पुराण गाथा और नाराशंसीका प्रिय धाम होता है जो इस बात को जानता है"

इसी प्रसंग में पृ.३ पर लिखते हैं—

"इन वैदिक प्रमाणों के देखने से यह बात स्पष्ट जानी जाती है कि पुराण भी सनातन और नित्य तथा अपौरुषेय माने जा सकते हैं।"

प्रशंसित पण्डित जी ने अ ११.७.२४ का जो अर्थ किया है, वह अधूरा तो है ही, साथ ही अशुद्ध भी है। पण्डित जी ने पुराणं' पद को स्वतन्त्र माना है, किन्तु वह है विशेषण। देखिए मन्त्र का शुद्ध अर्थ इस प्रकार है—

(पुराणं) पुराण स्वरूप (यजुषा सह) यजुर्वेद के साथ (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद तथा (छन्दांसि) अथर्ववेद यह (सर्वे) सारे (उत्-शिष्टात) सबसे उत्तम शिक्षक परमात्मा से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए (दिवि) ज्ञानके निमित्त अथवा ज्ञान से ज्ञेय (देवाः) सूर्य्यचन्द्रादि सब दिव्य पदार्थ अथवा संपूर्ण विद्याओं के प्रकाशक वेद (दिविश्रितः) उसी परमात्मा के आश्रित हैं।

इस मन्त्र के पद क्रम पर विचार कीजिए। यदि 'पुराणं' पदका अर्थ वेद से अतिरिक्त कोई ग्रन्थ विशेष होता, तो यह शब्द या तो मन्त्र के आरम्भ में होता, या मन्त्र के पूर्वार्द्ध के अन्त में, इस प्रकार सन्देह ही न रहता। मन्त्र के बीच में रखने का तात्पर्य्य इसे सबका विशेषण बनाना है। यह विशेषण एक विशेषता रखता है—पुराण शब्द का अर्थ है पुराना होता हुआ भी नया। यह वेदके ही विषय में पूर्णतया चरितार्थ हो सकता है। पुराण के विषय तो स्वयं पौराणिक भी कहते हैं कि पुराण अपने वास्तव रूप में नहीं

रहे। किन्तु वेद के संबन्ध में पाश्चात्य विद्वानों तक की सम्मति है, कि उन में अक्षर मात्रा, बिन्दु, विसर्ग का भी भेद नहीं पड़ा।

इस से अगले दो मन्त्रों से पौराणिकों की कोई इष्टसिद्धि नहीं होती, अतः हम उस पर कोई विचार यहां प्रकाशित नहीं करते।

इस प्रकार यह स्पष्ट सिद्ध होगया कि पुराणों को वेदतुल्य अनादि बतलाना निराधार साहस के अतिरिक्त कुछ नहीं।

पुराण धर्म्म ग्रन्थ नहीं

आज तक तो पौराणिक विद्वान् पुराणों को धर्म्मग्रन्थ मानते तथा बतलाते रहे, किन्तु आर्य्यसमाज के सतत शास्त्रार्थसंघर्ष ने उन के विचार में एक विचित्र किन्तु सत्यमार्ग की ओर लेजाने वाली क्रान्ति पैदा करदी है। माघ सम्वत् १९८६ में दिल्ली में आर्य्य-समाज तथा सनातन धर्म्मसभा का ६ दिन तक परस्पर शास्त्रार्थ होता रहा। उस शास्त्रार्थ के विषय में 'हिन्दू संसार' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाला कट्टर पौराणिक साप्ताहिक पत्र) ने अपना एक प्रतिनिधि म. म. पण्डित श्रीगिरिधर शर्म्मा चतुर्वेदीजी के पास भेजा। पण्डितजी ने बातें जो कहीं, उनकी आलोचना तो फिर कभी की जाएगी। किन्तु हम उन के तीन उत्तर प्रश्नसहित उद्धृत कर देते हैं—

"प्र. ब्रह्मवैवर्त्त आदि पुराणों में जो लाखों गौओं के वध आदि की बात समाजकी ओर से कही गईथी, उसका उत्तर सनातन धर्म्म सभा से क्यों नहीं दिया गया।

उत्तर—उस शास्त्रार्थ में इस का उत्तर देने की ज़रूरत नहीं थी। क्यों कि शास्त्रार्थ मांसविधान पर था। इतिहास कोई

विधान नहीं होता । इतिहास में सब प्रकार के लोगों के चरित्र लिखे जाते हैं । धर्म्म की विधि और चीज़ है । इतिहास और चीज़ है । यह प्रसङ्ग तो उस शास्त्रार्थ में आना ही नहीं चाहिए था यह तो केवल देवेन्द्र जी ने लोगों पर बुरा असर डालने के लिए उठा लिया था ।

प्र. आप के मत से इन बातों का क्या जवाब है ।

उत्तर—हमारे यहां तो पुराणों में स्पष्ट लिखा है । कि उन दिनों के राजा सब प्राय: असुरों के अंश थे । उन के ही अत्याचार से घबड़ा कर पृथिवी जब प्रार्थना करने गई थी तब भगवान् ने कृष्ण अवतार लिया था । भागवत के दशम स्कन्ध के आरम्भ में ही आता है—

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ।
आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥

अर्थात्—राजाओं के रूप में जब हजारों दैत्य पैदा हो गए, तो उन के अत्याचारों से घबड़ा कर पृथिवी ब्रह्मा जी की शरण में पहुंची । फिर भला दैत्यों के अंश राजा लाखों करोड़ों गौ मारते थे इस में आश्चर्य ही क्या था । जब भगवान् ने उन सब का नाश कया तब गौओं की रक्षा हुई । इसी लिए भगवान् का प्रधान नाम गोपाल है ।

प्र. किन्तु वह प्रसंग तो रुक्मिणी विवाह था । वहां ऐसा अत्याचार क्यों हुआ ।

उत्तर—रुक्मिणी का खास भाई भी तो असुर का अंश था और सब सलाहकार वेगेरा वैसे ही थे । उन लोगों ने जो अत्याचार किए हों उन में कोई आश्चर्य नहीं । भगवान् कृष्ण ने तो न वहां

कन्यादान लिया और न उन की बरातने वहां भोजन किया। बरात गयी ही नहीं थी युद्ध के लिए सेना गई थी। फिर भगवान् कृष्ण से इस अत्याचार का क्या सम्बन्ध ? बस, **"उन्हीं असुरों के काम इतिहास रूप पुराणों में लिखे गये हैं। जिनका कि धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है।"**

(हिन्दू संसार ८ फरवरी सन् १९२९ ई०)

जो वाक्य स्थूलाक्षरों में हैं, उन्हें विशेष रूप से पढ़ें, पाठकों की सुविधा के लिए हमने इन्हें स्थूलाक्षरों में किया है। पण्डित जी की सनातन धर्म्म संसार में धाक है। वे बहुत प्रमाणिक विद्वान् माने जाते हैं। वे पुराणों को धर्म्मग्रंथों को आसन से उतार कर सामान्य इतिहास का स्थान दे रहे हैं। इसी को कहते हैं—

'क्या लुत्फ़ जो गैर परदा खोले।
जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले।

कूर्म्मपुराण की विषय सूची

कूर्म्म पुराण के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध नाम से दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध में तिरपन ५३ अध्याय हैं, और उत्तर में छियालीस ४६ अध्याय हैं। श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र जी ने अपने 'अष्टादश पुराणदर्पण में पूर्वार्द्ध के ५१ अध्याय और उत्तरार्द्ध में ४४ अध्याय लिखे हैं। (देखो अ० पु० द० पृष्ठ ३७४-३७६) इस प्रकार हमारे पुराण से ३ अध्याय का भेद पड़ता है। संभव है, पण्डित जी की पुस्तक से तीन अध्याय छूट गए हो या कहीं दो अध्याओं का एक एक कर दिया गया हो। अथवा हमारे ग्रन्थ में तीन अध्याय पीछे से किसी ने सम्मिलित कर दिए हों, किं वा किसी एक अध्याय के दो या अधिक अध्याय बना दिए गए हों। अस्तु, जो भी हो।

इससे यह स्पष्ट है, कि यह ग्रन्थ अपने प्रकृत रूप में नहीं रहा। वेद को छोड़ कर कदाचित् ही कोई ग्रन्थ अपने असली रूप में इस समय मिलता हो। अतः उस अपरिवर्त्य वेद को ही धर्म्मग्रन्थ मान, तदनुसार अनुष्ठान कर अपना कल्याण साधन करना चाहिए। अस्तु प्रकृतमनुसराम :—

पूर्वार्द्ध

१. शौनकादि के प्रश्न करने पर सूत जी का कथारम्भ करना, समुद्र मन्थन से से उत्पन्न लक्ष्मी की महिमा वर्णन के प्रसंग से इन्द्रद्युम्न की मुक्ति का वर्णन।

२. कूर्म्म रूपधारी भगवान् का नारदादि मुनियों के प्रति अपने अनुग्रह और कूर्म से ब्रह्मा और शिव की उत्पत्ति का वर्णन करना। ब्रह्मा जी का विष्णु से संसार को मोहने के लिए लक्ष्मी की नियुक्ति के लिए प्रार्थना। 'केवल कुमार्ग गामियों को मोहना चाहिए' ऐसा कह कर विष्णु जी का लक्ष्मी को उस कार्य्य पर लगाना। कुछ सृष्टि वर्णन, वर्णाश्रम धर्म्म वर्णन।

३. नारदादि के पूछने पर भगवान् कूर्म्म का आश्रम क्रम का वर्णन करना।

४. प्राकृत सृष्टि का वर्णन।

५. काल का वर्णन, काल विभाग वर्णन।

६. समुद्र में डूबी हुई पृथिवी को वराह भगवान् का निकाल कर अपने ठिकाने पर स्थापित करना।

७. सृष्टि वर्णन।

८ स्वायंभवशतरूप की बनाई सृष्टि का वर्णन।

९, ब्रह्मा जी का शेषशायी विष्णु के साथ 'सारा संसार मेरे आधार पर है' इस विषय पर विवाद। एक दूसरे का एक दूसरे

के उदर में प्रवेश। ब्रह्मा जी का विष्णु जी के नाभि से निकलना। शिव जी का आगमन। विष्णु और ब्रह्मा जी का शिव की स्तुति करना। शिव जी का ब्रह्मा जी को वर देकर चले जाना।

१०. जिष्णु और विष्णु का मधु और कैटभ को हराना। विष्णु जी का शिव जी को सृष्टि रचने पर लगाना। शिव जी का जन्म मरण रहित सृष्टि रचना, विष्णु जी का जन्म मरण युक्त सृष्टि रचने के लिए आदेश करना, शिव जी का उसे अस्वीकार करना।

११. दक्ष कन्या का प्रादुर्भाव।

१२. श्री कूर्म्मकृत देवी माहात्म्य वर्णन, उसकी महिमा देख कर मेनां तथा हिमवान् का उसकी स्तुति करना। पार्वती जी का शंकर जी के पास जाना।

१३. दक्ष कन्याओं की सन्तति।

१४. स्वायंभुव मनु का वंश, दक्ष को शिव जी का शाप।

१५. दक्षकृतयाग में शिव जी का भाग न निकालने के कारण दधीच का ब्राह्मणों को शाप देना, वीरभद्र द्वारा दक्षयज्ञ के नाश किए जाने पर पार्वती की प्रार्थना से दक्ष, देवों तथा ब्राह्मणों पर शिव का अनुग्रह।

१६. दक्षकन्या वंश कथन, हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु का वध, शिवद्वारा अन्धक का निग्रह।

१७. वामन का बलि को जीतकर त्रिलोकी का राज्य पुरन्दर (इन्द्र) को देना।

१८. कश्यप वंश वर्णन।

१९. ऋषिवंश वर्णन।

२० राजवंश वर्णन, राजा वसुमना का चरित्र।

२१. इक्ष्वाकुवंश के वर्णन मिषसे संक्षेप से ८

२२. पुरुरव आदि पुरुवंशीय राजाओं के वर्णन के प्रसंग में राजाओं के लिए प्रधानतया विष्णु जी की उपासना का विधान।

२३. जयध्वज वंशोत्पन्न राजा दुर्जय का उर्वशी से अनुराग, उस के पापनाश के लिए काशी में विश्वेश्वरी जी के दर्शन करना।

२४. संक्षेप से यदुवंश वर्णन।

२५. पुत्र की अभिलाषा से भगवान् श्रीकृष्ण जी का उपमन्यु के आश्रम में जाना, तथा उनके उपदेश से कृष्ण जी का शिवराधन करना, और शिव की कृपा।

२६. श्री शंकर का यशो वर्णन, लिंगोत्पत्ति वर्णन।

२७. श्रीकृष्ण जी के पुत्र साम्ब आदि के वंश का वर्णन।

२८. पार्थ अर्जुन को व्यास जी के दर्शन।

२९. युगों और वंशों का कीर्त्तन।

३०-३१. कलियुग के दोष दिखाते हुए उस युग में शिव पूजा से कल्याण प्राप्ति का वर्णन, काशी माहात्म्य।

३२. प्रत्येक लिंग का माहात्म्य कथन द्वारा काशी माहात्म्य।

३३. शंकुकर्ण पिशाच के उद्धार की कथाद्वारा काशी माहात्म्य वर्णन।

३४. काशीवास आदि के अनेक फल।

३५. काशी के मुख्य मुख्य तीर्थों का वर्णन।

३६. प्रयाग माहात्म्य।

३७ प्रयाग में यात्रा की विधि।

३८. प्रयाग में माघमास में तीन दिन वास का फल।

३९. यमुना माहात्म्य।

४०. भुवनविन्यास प्रसंग से स्वायंभुव मनु के वंश का वर्णन।

४१. ज्योतिः संनिवेश के वर्णन प्रसंग से भूर्लोक का परिमाण

उत्तरार्द्ध

व्यास गीता

२७ वानप्रस्थाश्रम के धर्म्म ।

२८ यतियों (सन्यासियों) के धर्म्म ।

२९ यतिधर्म्मों में विशेष ।

३० ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त ।

३१ ब्रह्मा जी के अहङ्कार करने पर कालभैरवद्वारा उन का सिर कटना, उस हत्या के दूर करने के लिए 'कपाल मोचन' नामक तीर्थ की उत्पत्ति का निरूपण ।

३२ शराब पीना आदि महापातकों का प्रायश्चित्त कथन ।

३३ अगम्यागम्य, तथा अवध्य की हत्या का प्रायश्चित्त निरूपण ।

३४ चोरी, अभक्ष्य भक्षण, अपेयपान, अयाज्ययाजन, नित्य-कर्म्म का न करना आदि कर्मों का प्रायश्चित वर्णन । प्रसंग से सीता का पातिव्रत ।

३५ प्रयागादितीर्थों का वर्णन ।

३६ रुद्राकोटितीर्थ का उपाख्यान ।

३७ मठ, महालय, केदार आदि तीर्थों का वर्णन ।

३८,३९. कर्म्मवासना में आसक्त मुनियों को समझाने के लिए स्त्रीवेशधारी विष्णु के साथ श्रीशिवजी का दारुवन में प्रवेश ।

४०. नर्मदा माहात्म्य ।

४१. नर्मदातीरवर्त्ती शिवलिंग का माहात्म्य ।

४२. भृगुतीर्थवर्णन ।

४३. जप्येश्वर महिमा ।

४४. पञ्चनद आदि तीर्थों की महिमा ।

४५. कूर्म्मरूपी भगवान् का प्रतिसंचरवर्णन ।

४६. प्राकृत प्रलय कथन, संक्षेप से समस्त कथा, कूर्म पुराण का फल कथन ।

सूची पर विचार

इस सारी सूची को पढ़ने से यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है, कि इस ग्रन्थ में कोई विशेष क्रम नहीं। दूसरे पुराणोंके विषय के साथ मिलान करने पर इस में कोई अपूर्वता भी नहीं मिलती । कोई विशेष ऐतिहासिक तत्त्व भी नहीं । अतः ऐसे निश्चय होता है कि किसी पण्डितने इधर उधर पुराणों से विषय लेकर एक ग्रन्थ बना दिया है । यदि वर्त्तमान कूर्म्म पुराण-संसार में न भी रहे, तो भी पौराणिकों की कोई हानि नहीं, क्यों कि इस में निरूपित समस्त विषय दूसरे पुराणों में वर्णित हैं । प्रमाण के लिए इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि कूर्म्मपुराण के पूर्वार्द्धके २५ वें अध्यायमें कृष्ण जी का संतान प्राप्तिके लिए उपमन्यु मुनिके उपदेशसे शिव जी की आराधना वर्णित है । और यही कथा लिंग पुराण के पूर्वार्द्ध अ०१०८में वर्णित है । भेद केवल इतना है कि लिंग पुराण में कथा संक्षेप से लिखी है, कूर्म पुराण थोड़े विस्तार से निरूपण की गई है ।

कूर्म्मपुराण के उत्तरार्द्ध में तो दो स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं, एक ईश्वर गीता, दूसरा व्यास गीता । व्यास गीता तो स्मृति ग्रन्थ है । प्रतीत ऐसा होता है कि कूर्म्म पुराण के आरंम्भ में प्रतिज्ञात ६००० श्लोकों की संख्या पूरी करने के लिए किसी ने पीछेसे यह दो ग्रन्थ मिला दिए हैं । परन्तु संख्या फिर भी पूरी ६००० न हुई । इसी को कहते हैं. "भक्षितेपि लशुने न शान्तो व्याधिः ।"

विषयसूची पढ़ने से एक बात और भी खटकती है । कूर्म्म-पुराण नाम से तो वैष्णव पुराण मालूम होता है, किन्तु शिवोत्कर्ष का प्रतिपादन करता दिखाई देता है । अवसर अनवसर की चिन्ता न करके शिव जी की महिमा का वर्णन कर ही देता है । इस दृष्टि

। यह दोष होते हुए भी गुण है क्योंकि इससे सांप्रदायिक द्वेष का
ोप कम हो जाता है। उत्तरभाग १-११ अध्याओं में ईश्वर गीता
। उस के पश्चात् १२ से ४६ अध्याय तक व्यास गीता है, किन्तु
समें प्रायश्चित्त प्रसंग से कई अध्याय तीर्थमाहात्म्य के हैं। वे
व्यास गीता का भाग नहीं है, क्योंकि व्यासगीता प्रत्येक अध्याय
के आरंभ में 'व्यास उवाच' और अध्याय की अन्तिम पुष्पिका में
'व्यासगीतासु' शब्द आता है, जो इन तीर्थ माहात्म्य वाले अध्यायों
में नहीं हैं,इन अध्यायों के आरम्भ में प्रायः 'सूत उवाच' आता है।
और अन्तिम पुष्पिका में साधारणतया कूर्म्म पुराण के अध्याय
की संख्या होती है।

व्यासगीता के संबन्ध में एक और बात भी लिख देना उचित
प्रतीत होता है। व्यासगीता नाम से तो ब्रह्मविद्या की प्रतिपादिका
प्रतीत होतीहै,किन्तु है यह धर्मशास्त्र। इसमें ब्रह्मचर्य्यदि आश्रमोंके
धर्म तथा श्राद्धविधि आदि विषय संकलित हैं। और वह भी प्रायः
मनुस्मृति से संगृहीत किए गए हैं। यह तो इसके आरंभ में लिख
दिया गया है, जैसाकि—व्यास उवाच—

> शृणुध्वं ऋषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम्।
> कर्म्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम् ॥१॥
> आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणानां प्रदर्शितम्।
> ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः ॥२॥
>
> कूर्म्मपु.उ.अ.१२

व्यास जी बोले—

हे ऋषियो! आप सब वक्ष्यमाण सनातन, ब्राह्मणों का
आत्यन्तिक फल देने वाला, वेद से सिद्ध, ब्राह्मणों का संपूर्ण
प्रदर्शक कर्म्मयोग सुनो। इसे पहले प्रजापति मनुने जिज्ञासु ऋषियों
को सुनाया था॥

प्रसंग से यह बतला देना आवश्यक है, कि यह 'अष्टादश स्मृति में छपी 'व्यास स्मृति' से सर्वथा भिन्न वस्तु है। उसमें केवल चार अध्याय है। इस में तीर्थमाहात्म्य के अध्यायों को मिला दिया जाए तो ३५ अध्याय होते हैं। इस व्यासगीता का लेखक प्रचलित मनु स्मृति का एक नया सासंस्करण तय्यार कर रहा था। किन्तु राज-प्रकरण का विषय उसमें संमिलित नहीं कर सका, उस त्रुटि को पूर्ण करने के लिए तीर्थमाहात्म्य को मिलाकर उसने प्रचलित मनु-स्मृति के लगभग बराबर श्लोक संख्या कर दी।

नारद पुराण का मत

हम पहिले भी लिख आए हैं, कि अन्य पुराणों में कूर्म्मपुराण की जो विषयसूची दी हुई है, उस से वर्त्तमान कूर्म्मपुराण से बहुत भेद है। पाठकों के सन्तोष के लिए हम नारदपुराण में दी हुई कूर्म्मपुराण के उत्तर भाग की सूची यहां उद्धृत करते हैं—

उत्तरेऽस्य विभागे तु पुरा गीतेश्वरी ततः।
व्यासगीता ततः प्रोक्ता नानाधर्म्मप्रबोधनी ॥१॥
नानाविधानां तीर्थानां माहात्म्यञ्च पृथक् ततः।
नानाधर्म्मप्रकथनं ब्राह्मीयं संहिता स्मृता ॥ २ ॥
अतः परं भागवती संहितार्थ निरूपणे।
कथिता यत्र वर्णानां पृथग् वृत्तिरुदाहृता ॥ ३ ॥
(तदुत्तरभागीयभगवत्याख्य द्वितीयसंहितायाःपञ्चपादेषु)
पादेस्याः प्रथमे प्रोक्ता ब्राह्मणानां व्यवस्थितिः ॥४॥
सदाचारत्मिका भोगसौख्यविवर्द्धिनी।

द्वितीये क्षत्रियाणांतु वृत्तिः सम्यक् प्रकीर्त्तिता ॥५॥
यया स्वाश्रितया पापं विधूयेह व्रजेच्छिवम् ।
तृतीये वैश्यजातीनां वृत्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥ ६ ॥
यया चरितया सम्यग्लभते गतिमुत्तमाम् ।
चतुर्थेऽस्यास्तथा पादे शूद्रवृत्तिरुदाहृता ॥ ७ ॥
यया सन्तुष्यति श्रीशो नृणां श्रेयोविवर्द्धनः ।
पञ्चमेऽस्य ततः पादे वृत्तिः सङ्करजोदिता ॥ ८ ॥
यया चरितयाप्नोति भाविनीमुत्तमाम् जनिम् ।
इत्येषा पञ्चपद्युक्ता द्वितीया संहिता मुने ॥ ९ ॥
तृतीयात्रोदिता सौरी नृणां कामविधायिनी ।
षोढा कर्म्मसिद्धिः सा बोधयन्ति च कामिनाम् ॥१०॥
चतुर्थी वैष्णवी नाम मोक्षदा परिकीर्त्तिता ।
चतुष्पदी द्विजादीनां साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी ॥११॥

नारद पुराण

(अ. पु. द. पृ. ३७७–३७८ से उद्धृत)

अर्थात्—इस के उत्तर भाग में पहिले तो ईश्वरगीता है तत्पश्चात् अनेक धर्म्मों का बोध कराने वाली व्यासगीता कही गई है। ॥ १ ॥ फिर नाना प्रकार के तीर्थों का माहात्म्य और नाना धर्म्मों का कथन उस से पृथक् है, इसे 'ब्राह्मीसंहिता' कहते हैं ॥ २ ॥ इस से आगे अर्थनिरूपण में 'भागवती संहिता' कही है, जिस में वर्णों की जुदाजुदा वृत्ति कही गई है ॥ ३ ॥ (कूर्म्मपुराण के उत्तर

भाग की दूसरी 'ब्राह्मी संहिता के पांच पादों में से') इस के पहिले पाद में ब्राह्मणों की भोग और सुख बढ़ाने वाली सदाचारमयी व्यवस्था का कथन किया गया है दूसरे पाद में क्षत्रियों की वृत्ति का भली प्रकार निरूपण किया गया हैं ॥ ४-५ ॥ जिस का आश्रय करने से पापनाश करके शिव को प्राप्त होता है । तीसरे पाद में वैश्य लोगों की चार प्रकार की वृत्ति कही है ॥ ६ ॥ जिस के आचरण से भली कार उत्तम गति को प्राप्त करता है । और इस के चौथे पाद में शूद्र की वृत्ति का निरूपण किया गया है ॥७॥ जिस से मनुष्यों का कल्याण बढ़ाने वाला श्रीश (विष्णु) सन्तुष्ट होता है इस के पांचवे पाद में सङ्कर वर्णं की वृत्ति का वर्णन है ।८। जिस के आचरण करने से भावी उत्तम जन्म को प्राप्त करता है, हे मुने ! यह पांचपाद वाली दूसरी 'ब्राह्मी संहिता' कही गई है ९॥ इस में तीसरा 'सौरी संहिता' है, जो मनुष्यों की कामना पूरी करने वाली है, तथा अभिलाषियों को ६ प्रकार से षट्कर्म्म सिद्धि का ज्ञान कराती हैं ॥ १० ॥ चौथी 'वैष्णवी संहिता' नामक मोक्षदायिनी कही गई है । यह चतुष्पदी है और साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है ।११

अब कूर्म्मपुराण की सूची के साथ मिलान किजिए, तो आप को मालूम हो जाएगा—कि भागवती संहिता, सौरीसंहिता तथा वैष्णवीसंहिता गायब हैं ।

कोई कह सकता है कि नारदपुराण में यह वचन किसी ने पीछे से मिला दिए होंगे। उस के सन्तोष के लिए इतना ही निवेदन पर्याप्त होगा कि स्वयं 'कूर्म्मपुराण' के आरंभ में भी यह बात लिखी है, देखिए-

इदं तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्ममुत्तमम् ।
चतुर्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः ।। २१ ।।
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्त्तिताः ।
चतस्रः संहिताः पुण्याःधर्म्मकामार्थमोक्षदाः ।।२२।।
इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्त सम्मिता ।
भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया ।।२३।।
कू॰ पु॰ पू॰ अ॰ १ ।

यह तो उत्तम पन्द्रहवां कूर्म्मपुराण है,यह पवित्र पुराण संहिता भेद से चार प्रकार का है । ब्राह्मी, भागवती, सौरी तथा वैष्णवी यह चार धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाली पवित्र संहिताएं हैं । और यह तो चारों वेदों से संमित 'ब्राह्मी संहिता' है । इस में ६००० श्लोक हैं ।

कूर्म्मपुराण के इस वचन से स्पष्ट सिद्ध होता है, कि भागवती आदि ३ संहिताएं गुम हो गई हैं, तभी तो इस के संग्रहीता ने 'इयं तु संहिता ब्राह्मी' (यह तो ब्राह्मी संहिता है) वचन कहा ।

भागवती संहिता की विषयसूची से प्रतीत होता है, कि उस में सब वर्णों के धर्म्मों का निरूपण है । उस के न होने से पौराणिक लोग कैसे अपने अपने वर्णों के धर्म्मों का पालन कर सकेंगे । यदि कहो, कि दूसरे ग्रन्थों में देख कर, तो फिर इस पुराण की आवश्यकता ही क्या है ।

पंक्तिपावन

पौराणिकों में मृतक श्राद्ध पर विशेष बल दिया जाता है यद्यपि आर्य्यसमाज के साथ शास्त्रार्थ संघर्ष ने पौराणिकों का दृष्टिकोण

इस विषय में भी परिवर्तित कर दिया है। तथापि जनसाधारण उसी आस्था से इस कृत्य को करते हैं। जिन ग्रन्थों में श्राद्ध विधि है, उन में 'किन को श्राद्ध समय भोजन कराना चाहिए' इस का भी निरूपण है। कूर्म पुराण के उत्तर भाग के २१ वें अध्याय (व्यास गीता के १० वें अध्याय) में इन का वर्णन है। हम वह सारा प्रकरण उद्धृत करके साथ अर्थ भी दे देते हैं, और उस के पश्चात् श्राद्ध में वर्ज्य या पंक्तिदूषकों का भी वर्णन करेंगे ।

व्यास उवाच—

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितॄंश्चन्द्रक्षये द्विजः ।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमना शुचिः ॥१॥
पूर्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् ।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदानानां च स्मृतः ॥२॥
ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसा ।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः ॥३॥
पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च ।
वह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा योऽभवत् ॥४॥
त्रिणाचिकेतश्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च ।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः ॥५॥
अग्निहोत्रपरो विद्वान् न्यायविच्च षडङ्गवित् ।
मन्त्रब्राह्मविच्चैव यश्च स्याद्धर्मपाठकः ॥६॥
ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः ।
ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धः सहस्रदः ॥७॥

चान्द्रायणव्रतपरः सत्यवादी पुराणवित् ।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः ॥८॥
विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः ।
महादेवार्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः ॥९॥
अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा ।
सत्री च दाननिरतो विज्ञेयः पंक्तिपावनः ॥१०॥
(युवानः श्रोत्रियाः स्वस्था महायज्ञपरायणाः ।
सावित्रीजापनिरता ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥
कुलानां श्रुतवन्तश्च शीलवन्तस्तपस्विनः ।
अग्निचित् स्नातको विप्रो विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥)
मातापित्रोर्हिते युक्तः प्रातः स्नायी तथा द्विजः ।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पंक्तिपावनः ॥११॥
ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थचिन्तकः ।
श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१२॥
वेदविद्यारतो स्नातो ब्रह्मचर्य्यपरः सदा ।
आथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१३॥
असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च ।
सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥१४॥
भोजयेद्योगिनं शांतं तत्वज्ञानरतं यतः ।
अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकन्तथा ॥१५॥ द्वा
तदलाभे तु गृहस्थन्तु मुमुक्षुं संगवर्जितम् ।

सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमपि भोजयेत् ॥१६॥
प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हविः ।
फलं वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते ॥१७॥
तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम् ।
भोजयेद्धव्यकव्येषु अलाभादितरान्द्विजान् ॥१८॥
एष वै प्रथमः कल्पः प्रदाने हव्यकव्ययोः ।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेयः सदा सद्भिरनुष्ठितः ॥१९॥
मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत् ॥२०॥
(कूर्म पुराण उ० अ० २१)

व्यास जी बोले —

स्नान करके, यथोक्त विधि से चन्द्रक्षय के समय पितरों का तर्पण करके शान्तमन और पवित्र द्विज पिण्डान्वाहार्यक=मासिक श्राद्ध करे ॥१॥ पहिले से ही वेदपारगामी ब्राह्मण को देखे। क्यों कि वही हव्य (देवता के निमित्त जो दिया), और कव्य (पितरों के निमित्त जो दिया जाए) दानों का तीर्थ है ॥ २॥ जो सोमपान करने वाले, रजोगुण रहित, धर्मज्ञानी, शान्तचित्त, व्रतधारी, नियमनिष्ठ, और ऋतुकालाभिगामी हैं। अग्निहोत्री, वेदपाठी, यजुर्वेद का ज्ञाता ऋग्वेद का जानने वाला, त्रिसुपर्ण कर्म का करने वाला (ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों का नाम त्रिसुपर्ण है, उन में विहित कर्म का करने वाला) अथवा जो त्रिमधु कर्म का करने वाला हो, त्रिणाचिकेत; (यजुर्वेद में उपदिष्ट कर्म विशेष करने वाला), सामगान करने वाला, ज्येष्ठसामका गान

करने वाला, अथर्वशीर्ष का पढ़ने वाला, और विशेष करके रुद्राध्याय का पाठ करने वाला हो, अग्निहोत्र में तत्पर, विद्वान, न्याय का जानने वाला तथा षडङ्गवेत्ता हो, जो मन्त्र और ब्राह्मण का जानने वाला हो, साथ ही धर्मशास्त्र का पढ़ने वाला हो ऋषियों के व्रत वाला हो। ऋषिपुत्र हो, शांतचित्त, जितेन्द्रिय, ब्राह्म विवाह द्वारा प्राप्त पत्नी से उत्पन्न, गर्भ से शुद्ध, हजारों का दाता, चान्द्रायणव्रत का करने वाला, सत्यवादी, पुराणवेत्ता, गुरु, देव तथा अग्नि पूजा में तत्पर ज्ञाननिष्ठ, सब से विमुक्त, धीर, ब्रह्मभूत, द्विज श्रेष्ठ, महादेव के पूजन में लगा हुआ, वैष्णव, पंक्तिपावन हो, ॥३-९॥ अहिंसा में निरत, प्रतिग्रह कभी न करने वाला, यज्ञ करने वाला, दान देने वाला, 'पंक्तिपावन' जानना चाहिए ॥१०॥ (जंवान, श्रोत्रिय = वेदज्ञ, स्वस्थ, महायज्ञ करने वाले, गायत्रीजाप में निमग्न, ब्राह्मणों को 'पंक्तिपावन' जानना चाहिए ॥ प्रसिद्ध कुलीन, शीलवाले, तपस्वी, अग्निचित्, स्नातक, ब्राह्मण को 'पंक्तिपायन' जानना चाहिए।) माता पिता की सेवा में लगाए, तथा प्रातः स्नान करने वाले द्विज, अध्यात्मज्ञानी, मुनि, जितेन्द्रिय को 'पंक्तिपावन' जानना चाहिए ॥११॥ ज्ञाननिष्ठ, महायोगी वेदान्त के अर्थों का विचार करने वाला, श्रद्धालु, श्रद्धा, करने वाला ब्राह्मण 'पंक्तिपावन' समझा जाता है ॥१२॥ वेदविद्यारत, स्नातक, सदा ब्रह्मचारी, अथर्ववेद के जानने वाले, मुमुक्षु ब्राह्मण को 'पंक्तिपावन' जानना चाहिए ॥१३॥ भिन्न प्रवर वाला, तथा भिन्न गोत्र वाला, संबन्ध रहित (जिस के साथ यजमान का कोई रिश्ता न हो) ब्राह्मण 'पंक्तिपावन' होता है ॥१४॥ शान्त, योगी, तत्वज्ञानी को भोजन कराए। उसके न मिलने पर, नैष्ठिक ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय, तथा उपकार करने वाले को भोजन कराए ॥१५॥

उसके भी न मिलने पर संगरहित, मुमुक्षु गृहस्थ को भोजन कराए, किसी के भी न मिलने पर साधक=साधना में लगे हुए गृहस्थ को भोजन कराए ॥१६॥ प्रकृति के गुणों के तत्वों को जानने वाला वेदान्त का वेत्ता यति=संन्यासी, जिसका हवि खाता है, उस को सहस्र=अश्वमेध या सर्वस्व मेध से भी अधिक फल मिलता है ॥१७ इस वास्ते हव्य=देवकार्य्य में, कव्य=पितृ कार्य्य=श्राद्धादि में यत्न से, ईश्वरज्ञान परायण योगिराज को भोजन कराए, उसके न मिलने पर दूसरे द्विजों को ॥१८॥ यह हव्यकव्य के देने में प्रथम कल्प=विधि है। सज्जनों से सदा अनुष्ठित अनुकल्प यह कहते हैं—नाना, मामा, भांजा, ससुर, गुरु, दौहित्र=लड़की का पुत्र, विट्पति=दामाद=जामाता, संबन्धी, ऋत्विग्, यज्ञ करने वाले को भोजन कराए ॥१९–२०॥

अब विचारिए, आजकल जिन को श्राद्ध में भोजन कराया जाता है, उन में क्या कोई भी इन में से किसी भी गुण से युक्त होता है। यदि नहीं, तो श्राद्ध व्यर्थ ही नहीं जाता, अपितु पापका हेतु होता है, जैसा कि हम अभी कूर्मपुराणान्तर्गत इसी व्यास गीता के प्रमाण से दिखाएंगे।

यहां यह जताना अप्रासंगिक न होगा, कि व्यास गीता के इस प्रकरण के श्लोक प्रायः वर्त्तमान मनुस्मृति से लिए गए हैं। जैसे १६, २० श्लोक तो मनु के ३ अध्याय के १४७, १४८ श्लोकों के अविकल नकल हैं। २रा श्लोक भी मनु का ही है—मनु में पाठ भेद से है। यथा—

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः॥

मनु: ३।१३०

व्यास गीता के इन श्लोकों का वर्तमान मनुस्मृति के इन श्लोकों से मिलान करके देखिए, कि व्यासगीता में मनु की कितनी झलक है—

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बह्वृचं वेदपारगम् ।
शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥

मनुः ३।१४५॥

अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च ।
श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः ॥
त्रिणाचिकेतः पंचाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।
ब्रह्मदेयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग एव च ॥
वेदार्थप्रवक्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः ।
शतायुश्चैव विज्ञेयाः ब्राह्मणाः पंक्तिपावनाः ॥

मनुः ३।१८४—१८६

व्यासगीता में विस्तार और पुनरुक्ति है। मनु में संक्षेप से सारा वक्तव्य है॥

पंक्तिदूषक

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
पैशाची दक्षिणाशा नेहामुत्र फलप्रदा ॥२१॥
कामंश्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥२२॥
ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते ॥२३॥

यथोपरे वीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथानृचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम् ॥२४॥
यावतो ग्रसते पिण्डान् हव्यकव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान् ॥२५॥
अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमाः ।
यत्रैते भुंजते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजाः ॥२६॥
यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम् ।
स वै दुर्ब्राह्मणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन ॥२७॥
शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलानां च याजकः ।
वधवन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मवन्धवः ॥२८॥
दत्वानुयोगो द्रव्यार्थं पतितान्मनुरब्रवीत् ।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिताः ॥ २६ ॥
सुतविक्रयिणो ये तु परपूर्व्वासमुद्भवाः ।
असामान्यान्यजन्ते ये पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ३०॥
असंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये ।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥
वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः ।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः ॥३२॥
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः ।
न तस्य भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम् ॥ ३३ ॥

अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः ।
मिथ्याश्रमी च ते विप्राः विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः ॥३४॥
दुश्चर्म्मा कुनखी कुष्टी श्वित्री च श्यावदन्तकः ।
विद्धयजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः ॥३५ ॥
मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः ।
अगारदाही कण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः ॥३६॥
परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः ।
पौनर्भवः कुसीदश्च तथा नक्षत्रदर्शकः ॥ ३७ ॥
गीतवादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च ।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णो तथैव च ॥ ३८ ॥
अन्नदूषी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः ।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं भार्यानुवर्त्तितः ॥३९॥
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च ।
गोत्रस्पृक् भ्रष्टशौचश्च काण्डास्पृष्टस्तथैव च ॥ ४० ॥
अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः ।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः ॥ ४१ ॥
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दारतस्तथा ।
द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्म्माणि ॥४२॥
कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः ।
मित्रध्रुक् कुहकश्चैव विशेषात्पंक्तिदूषकाः ॥ ४४ ॥

सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाः स्वकर्मसु ।
ब्रह्महा चाभिशस्ताश्च वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ४४ ॥
शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः ॥ ४५ ॥
अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः ।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकः ॥ ४६ ॥
बहुनात्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते ।
निन्दितानाचरन्त्येते वर्ज्याःश्राद्धे प्रयत्नतः ॥ ४७ ॥
कूर्म. पु. उ, अध्याय २१ ॥

श्राद्ध में मित्रको भोजन न कराए, धन द्वारा इसका संग्रह करे। दक्षिणा की इच्छा पिशाची न यहां फल देती है, औ ना ही पर लोक में ॥ २१ ॥ श्राद्ध में मित्रकी भलेही पूजा करे, किन्तु मनोहर शत्रुको कभी न करे, क्योंकि विरोधी का खाया हविष्य परलोकमें फल नहीं देता ॥ २२ ॥ वेद न पढ़ने वाला ब्राह्मण तिनकों की आगकी भांति शान्त (नष्ट) हो जाता है। उसे हविष्य नहीं देना चाहिए। क्योंकि भस्म = राखमें हवन नहीं किया जाता। ॥ २३ ॥ जैसे ऊपर में बीज बोकर बोनेवाला फल को नहीं प्राप्त करता, वैसेही वेद विहीनको हविष्य देकर दाता फल प्राप्त नहीं करता ॥ २४ ॥ वेद विहीन हव्यों और कव्यों नें जितने ग्रास खाता है, परलोक में उतने जलते हुए स्थूल लोह के गोलों को निगलता है ॥ २५ ॥ हे द्विजो ! चाहे विद्या और कुल से संपन्न हों, किन्तु आचार हीन हों, ऐसे नराधम जहां हविष्य खाते हैं, वह कृत्य राक्षसी हो जाता है ॥ २६ ॥ तीन पीढियों से जिसका वेद और

वेदी विच्छिन्न हो गई हों अर्थात् तीन पीढियोंसे जिस वंशमें वेदाध्ययन और यज्ञ बन्द हैं। वह 'दुर्ब्राह्मण'है। वह कभी भी श्राद्धादि के योग्य नहीं ॥ २७ ॥ शूद्रका नौकर,नौकर, राजा तथा शूद्रोंको यज्ञ कराने वाला, वध=हत्या तथा बन्धन से निर्वाह करने वाला, यह छ 'ब्रह्मबन्धु'हैं ॥ २८ ॥ द्रव्यके लिए देकर जो अनुयोग करे मनुने इनको पतित कहा है। वेद बेचने वाले ये सब श्राद्धादिमें घृणित हैं ॥२९॥ पुत्र बेचने वाले, दिधिपुपतिकी सन्तान, असद्दशों को यज्ञ कराने वाले ये सब पतित कहाते हैं ॥ ३० ॥ जो असंस्कृत के अध्यापक हैं और जो गुज़ारे के लिए पढ़ाते हैं, और जो गुज़ारे के लिए वेद पढ़ते हैं, वे सब पतित कहे जाते हैं ॥३१॥ वृद्ध श्रावक निर्ग्रन्थ, पंचरात्र के जानने वाले लोग, कापालिक,पाशुपत तथा इन जैसे और पाखण्डी ये सब दुष्ट तामसी जिसके हविष्य खाते हैं, उसका श्राद्ध इस लोक तथा परलोकमें फलप्रद नहीं होता ।३२-३३। जो द्विज अनाश्रमीहै,अथवा निरर्थक आश्रमीहै अथवा मिथ्याश्रमी है। ये ब्राह्मण'पङ्क्तिदूषक'हैं॥३४। बुरे चमड़े वाला,कुनखी,कोढ़ी, सुफ़ेद कोढ़ वाला,काले दान्तों वाला, विद्धयजनन,चोर, नपुंसक, नास्तिक, शराबी, शूद्रागामी और सन्तानघाता, दिधिपुपति,घर जलाने वाला, कुण्ड(पतिके जीते पर स्त्री में उत्पन्न पुत्र को कुण्ड कहते हैं।) का अन्नखाने वाला,सोम बेचने वाले द्विज,परिवेत्ता, (बड़ेके अविवाहित रहते भी जो विवाहादि कर ले उस छोटे भाई को 'परिवेत्ता'कहतेहैं) परिवित्ति (परिवेत्ता का बड़ा भाई) निराकृतिः=पंचमहायज्ञ न करने वाला, पौनर्भव सूद लेने वाला,तथा जोतिषी,गाने बजाने वाला बीमार, कान, हीनांग (जिसका कोई अंग कम हो) अधिकांग, (जिसका कोई अंग अधिक हो) अवकीर्ण, (ब्रह्मचर्य्य भंग करने वाला) अन्नको विगाड़ देने वाला, कुण्ड और गोलक, अभिशस्त,

तथा पुजारी, मित्र द्रोही, चुगल खोर तथा सदा स्त्रीका अनुगामी, माता पिता तथा गुरुको त्यागने वाले, धर्म्मपत्नी को त्यागने वाला, गोत्रनाशी, भ्रष्ट शौच, काण्डस्पृष्ट, सन्तान रहित, झूठा गवाह, भिखमंगा, थियेटर तमाशा से निर्वाह करने वाला, समुद्रयात्री, कृतघ्न, प्रतिज्ञा भंग करने वाला, वेद निन्दापरायण, देव निन्दातत्पर और द्विजों की निन्दामें रत-ये सब श्राद्ध कर्म्ममें निषिद्ध हैं ॥ ॥ २५-४२ ॥ कृतघ्न, चुगलखोर, क्रूर, नास्तिक, वेदनिन्दक, मित्र द्रोही, तथा जुआरी, यह विशेषतया 'पंक्ति दूषक' हैं ॥४३॥ यह सब श्राद्धमें अभोज्य हैं। और न ही स्वकर्म्मोंमें दान देने योग्य है। विशेष कर ब्रह्महत्यारा और अभिशस्त तो वर्जित हैं ॥ ४४ ॥ शूद्र के अन्न जल से जिसकी देह पुष्टी हुई है, जो सन्ध्योपासना नहीं करता, और जो महायज्ञ से रहित ब्राह्मण है, वह 'पंक्तिदूषक' है ॥ ४५ ॥ पढ़े को भुलाने वाला, स्थान दान से शून्य, तामस और राजस ब्राह्मण 'पंक्तिदूषक' होता है ॥ ४६ ॥ अधिक कहनेसे क्या ? जो विहित कर्म्मों को नहीं करते, और निन्दित कर्म्मों को करते हैं। उन्हें प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध में वर्जना चाहिए ॥ ४७ ॥

इसमें श्राद्धवर्ज्य ब्राह्मणों की गणना की है। ऊपर वाले इस करण को पढ़ कर क्या कोई पौराणिक यह कहने का साहस कर सकता कर सकता है। कि उसका श्राद्ध सफल है। इसके पढ़ने से स्पष्ट सिद्ध है कि यह श्राद्ध हानिकर है। पौराणिकों का अपना माननीय कूर्म्मपुराण जब श्राद्ध के संबन्ध में ऐसी कड़ी शर्तें लगा रहा है। तो इसके अर्थ श्राद्धनिषेधके अतिरिक्त और क्या हो सकता है। बौद्धों जैनों के साथ कापालिकों तथा पाशुपतों को वर्जित लिखा है और पाखण्डी बतलाया है। कापालिक तथा पाशुपत दोनों शैव हैं और शिवजी की महिमा इस पुराणमें भर

पट की गई है। ग्रन्थस्वारस्य का विचार करें, तो विवश होकर कहना पड़ता है कि यह व्यास गीता पीछे से कूर्म्मपुराणमें मिलाई गई है। ये सारे श्लोक भी मनु से लिए गए हैं, कहीं शब्दशः और कहीं अभिप्रायानुसार ! जैसा कि:—

यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्यव्येष्वमन्त्रवित् ।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तशूलर्ष्ट्ययोगुडान् ॥
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संग्रहः ।
न मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भोजयेद् द्विजम् ॥
संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः ॥
यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम् ।
तथानृचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलम् ।
कामं श्राद्धे ऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् ।
द्विषता हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ॥
ये स्तेनपतितक्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः ।
तान् हव्यकव्ययोर्विप्राननर्हान्मनुरब्रवीत् ॥
जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा ।
याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोजयेत् ॥
चिकित्सकान्देवलकान्मांसविक्रयिणस्तथा ।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥
प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्यावदन्तकः ।
प्रतिरोद्धा गुरोश्चैव त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥

यक्ष्मी च पशुपालश्च परिवेत्ता निराकृतिः ।
ब्रह्मद्विट् परिवित्तिश्च गणाभ्यन्तर एव च ॥
कुशीलवोऽवकीर्णी च वृषलीपतिरेव च ।
पौनर्भवश्च काणश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥
भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितस्तथा ।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टः कुण्डगोलकौ ।
अकारणपरित्यक्ता मातापित्रोर्गुरोस्तथा ।
ब्राह्मैर्यौनैश्च संबन्धैः संयोगं पतितैर्गतः ॥
अगारदाही गरद कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
समुद्रयायी वन्दी च तैलिकः कूटकारकः ॥
पित्रा विवदमानश्च कितवो मद्यपस्तथा ।
पापरोग्यभिशस्तश्च दाम्भिको रसविक्रयी ॥
धनुःशराणां कर्त्ता च यश्चाग्रेदिधिषुपतिः ।
मित्रध्रुग्द्यूतवृत्तिश्च पुत्राचार्य्यस्तथैव च ॥
भ्रामरी गण्डगाली च श्वित्र्यथो पिशुनस्तथा ।
उन्मत्तोऽन्धश्च वर्ज्याःस्युर्वेदनिन्दक एव च ॥
हस्तिगोश्वोष्ट्रदमको नक्षत्रैर्यश्च जीवति ।
पक्षिणां पोषको यश्च युद्धाचार्य्यस्तथैव च ॥
स्रोतसां भेदको यश्च तेषां चावरणे रतः ।
गृहसंवेशको दूतो वृक्षारोपक एव च ॥
श्वक्रीडी श्येनजीवी च कन्यादूषक एव च ।

नमस्ते कूर्म्मरूपाय विष्णवे परमात्मने ॥ ७ ॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः ॥ ८ ॥

भावार्थ

इन श्लोकों में अनेक वार नमस्ते शब्द का प्रयोग आता है जिस में परमात्मा के प्रति नमस्ते शब्द पुकारा गया और अनेक रूप से कृष्ण, गोविन्द, सूर्य्य, आदि के लिए अनेक वार नमस्ते शब्द का प्रयोग किया गया है, अन्य मतवादी इस शब्द की निन्दा करते और "मस्तके किमपि नास्ति" इत्यादि अर्थ करते हैं उनको अपने ग्रन्थों, का पठन पाठन करने से इस वात का निश्चय कर लेना चाहिये, यह नमस्ते ऐसा पवित्र पद है कि जिसका प्रयोग सम्पूर्ण पुराणों, महाभारत और अन्यान्य ग्रन्थों में अनेक वार आया है इस लिये इस नमस्ते शब्द को कभी त्याग नहीं करना चाहिये प्रत्युत इस का प्रचार करना ही कर्तव्य है ॥

॥ इति शम् ॥

ओ३म्

परिशिष्ट

यह पुराण असली नहीं।

शिवपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, वाराहपुराण, मत्स्यपुराण तथा पद्मपुराण के मत से कूर्मपुराण पन्द्रहवां है। इन पुराणों में जहां भी कूर्म्मपुराण की श्लोक संख्या का उल्लेख है, १७००० श्लोकों या १८००० श्लोकों का उल्लेख है, किन्तु उपलभ्यमान कूर्म्मपुराण में ६००० श्लोक भी नहीं हैं। इससे यही परिणाम निकलता है कि यह पुराण आजकल असली अवस्था में नहीं है।

यह केवल हमारा ही मत नहीं, अपितु प्रसिद्ध पौराणिक श्रीमत्पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र जी की भी सम्मति ऐसी है, वे अपने 'अष्टादशपुराण दर्पण' में लिखते हैं--

'नारद और मात्स्य में कूर्म का जो लक्षण निर्दिष्ट हुआ है, प्रचलित कूर्म्मपुराण में उसका आधा है, और मूल श्लोक भी कम हैं। प्रचलित कूर्म्मपुराण में केवल ६००१ मात्र पाये जाते हैं।"

पृ० २७९।

... ...

"पूर्वोक्त लक्षण के अनुसार कूर्म्मपुराण में आदि पुराण की बहुत सी सामग्री है, तौभी इस में तन्त्र की अनेक बातें हैं और मूल विषय छूट जाने से क्षुद्राकार धारण किया है, इसमें सन्देह नहीं।" पृ० २८०